

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमद् अनन्त शतकम्

विद्वद्वर्य्यैः श्रीमद् रामनारायणशास्त्रिभिर्निर्मितम्

पं० माधवाचार्यकी बनाई हुई भाषाटीका तथा
संक्षिप्त जीवन चरित सहित.

प्रकाशक

श्रीमान् सेठ लक्ष्मीनारायणजी भगवान
चकसजी सोमाणी।
मारवाडी बझार, बम्बई नं० २

पहली बार
१ अक्टूबर १९३७

प्रकाशकः—
श्रीमान् सेठ लक्ष्मीनारायणजी भगवान
बक्सजी सोमाणी,
मारवाड़ी बजार, बम्बई नं० २

पुस्तक मिलनेका पताः—
(१) श्री सत्यनारायण पुस्तकालय, मु० पो० मौलासर
जि० डीडवाना (मारवाड़)
(२) श्री वेंकटेश मंदिकर, फणशवाड़ी, बम्बई नं० २
(३) श्री रामदयाल सोमानी कंपनी, मारवाड़ी बजार, बम्बई नं० २

मुद्रकः—
रघुनाथ दिपाजी देसाई
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस, ६, केळेवाडी,
गिरगाव, मुंबई नं. ४.

प्रस्तावना

सच्चिदानन्द आनन्दकर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र 'महाराजकी .. अघट घटना पटु एवम् अकथ कथना चमत्कृति पूर्ण बड़ी विचित्र शक्ति है वह जिस बातको चाहता है उसके सारे उपकरणोंको अनायास ही उपस्थित कर देता है उन्हें परस्पर संगठित होनेमें प्रयत्नकी अणुमात्र भी अपेक्षा नहीं रहती।

मेरे लिए कुमर गजाधरजीके यहाँ जगह है इस कारण मैं श्रीनिवास मिलमें उनसे मिलने व कपड़ा बुननेकी बड़ी मिलोंके यांत्रिक चमत्कार देखने चला जाता हूँ। एक दिन वहीं मुझे उनके पिता श्री हजारी मलजी सोमाणी और राम दयालुजी सोमाणी भी मिल गये। आपके कथनमें मुझे वैकुण्ठवासी श्री प्रतिवादि भयंकर मठाधीश्वर 'जगद् गुरुके श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी महाराजके लिये वह अपार श्रद्धा झलकी कि—मैं अपने सारे कामोंको जहाँकी तहाँ छोड़कर इसकी हिन्दी टीका लिखने बैठ गया। टीका तैयार होते ही सोमाणी बन्धुओंने इसके छपनेका सारा प्रबन्ध तत्काल करा दिया।

इस शतकको इन्हींकी प्रेरणासे सदाचार ग्रन्थमालाके प्रवर्तक हिन्दी संस्कृतके स्वतंत्र लेखक वैयाकरण केसरी कवि सम्राट व्याख्यान मार्तण्ड आदि विविधोपाधि विभूषित पं. राम नारायण शर्म्मा नागनोलीने लिखा था। इस बातका कथन उन्होंने इसी शतकके अन्तमें कर दिया है। कविने अपने मूल ग्रन्थको वैकुण्ठवासी महाराजके ही चरणोंमे समर्पित करके उनपर अपनी हार्दिक श्रद्धा व्यक्त की है।

शतकका सारा तात्पर्य्य अनायास ही ध्यानमें आ जाय इसके लिये उनका छोटासा संक्षिप्त जीवन चरित भी इसीमें दे दिया गया है। फिर भी कविकी लिखी हुई अनेकों बातें ऐसी हैं जिनका वास्तविक हृदय कवितामें ही मिल सकता है। कविको कविता करती बार अपनी शब्द रचनाको किसी साचेके अन्दर तोर मटोर कर जमाना पड़ता है इस कारण प्राचीन कवियोंसे भी कहीं २ अशुद्धियाँ हुई हैं जो जानते हुए भी उन्हें दूर नहीं कर सकते थे आजके कवियोंसे कुछ अधिक हो जाती हैं वे अनिवार्य्य हैं इस कारण ध्यान देनेकी कोई खास वस्तु नहीं हैं।

मैं श्रीमान् सेठ लक्ष्मीनारायणजी भगवान बकसजी सोमाणीको अनेक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इसे लिखाया टीका कराई और प्रकाशनका सार भार सानन्द उठा लिया।

ध्यान उनके भावोंपर ही देना चाहिये महापुरुषोंके पवित्र चरित हर हालतमें पावन करते है उनके जीवनकी पवित्र घटनाएँ सबको पवित्र करती हैं इस कारण वे संग्राह्य और हृदय पटलपर लिखनेकी वस्तु हैं। भगवान रामानुजाचार्य्यके अपरावतार वै. श्री स्वामीजी महाराजके वैसे ही लोक पावन चरित्रोंका इसमें वर्णन है आशा है इसके मननाराधनसे लोग अपनी आत्माका सतत कल्याण करेंगे।

विनीत

पं० माधवाचार्य्य रिसर्चस्कालर

॥ समर्पण ॥

श्रीमद् वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य्य, उभयवेदान्त प्रवर्तक, श्री प्रतिवादि भयंकर मठाधीश्वर, श्रीः १००८ जगद्गुरु

श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी महाराज

सूरिकी पवित्र स्मृतिमें ही ये टूटे फूटे अक्षर आपसमें शृंखला बद्ध करके शतकके रूपमें समुदित किये गये थे एवम् उन्हें भेट भी आज उन्हींकी करता हूँ, लीजिये महाराज ! यह आपके जनकी समुपस्थित की हुई भेंट आप ग्रहण करिये ।

आपका—

रामनारायण

॥ संक्षिप्त जीवन चरित्र ॥

वम्बईमें सब जगह सन्नाटा छाया हुआ था जिन बाजारी कारोबारोंके मारे एक मिनटकी भी फुरसत नहीं मिलती थी वे शोकग्रस्त होकर निःशब्द सूने पड़े हुए थे। धार्मिक संसार चिन्तामें निमग्न हो रहा था श्री वैष्णव समाजके सारे भावुक व्यक्ति शिरपर पल्ला लिये हुए भद्र नजर आ रहे थे। भारतके समग्र बड़े बड़े शहरोंका भी यही हाल था।

सभी भाषाओंके बड़े बड़े पत्रकार जीवनकी महत्त्वपूर्ण घटनाओंको जाननेके लिये इधर उधर पूरी दौड़धूप कर रहे थे कोई भी इस दौड़में पीछे रहना नहीं चाहता था। सभीके शोकपूर्ण अग्रलेख निकल रहे थे।

महापुरुषोंके कार्य्य सभीके कल्याणके लिये हुआ करते हैं किसी एक व्यक्ति या एकही समाजके लिये नहीं होते क्योंकि वे सबके होते हैं एकके नहीं।

भाष्यकार भगवान रामानुजाचार्य्यके उभयवंशधर भगवद् दिव्य-लोकवासी श्री प्रतिवादि भयंकर मठाधीश्वर भारतसरकार व अखिल नरेशोंसे पूर्ण सम्मानित एच. एच. जगद्गुरु श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी सूरिने सारे मानव समाजके कल्याणके कार्य्य किये थे अतः आपके वियोगमें सभी मातम मना रहे थे।

उस समय स्थान और समयके अभावसे उनके जीवनके जिज्ञासुओंके हम पूर्णरूपसे उनके जीवन चरित्रका सार न दे सके इस कारण यहाँ उसके विषयमें थोड़ासा प्रयत्न करते हैं।

परिचय—उसीका हो सकता है जो एक देशी हो जिसे जहाँ वह रहे वहींके निवासी जान सकें; स्थानान्तरित दूसरे लोग विना जनाये न जान सकें। पर जो आदित्यकी तरह घर और बाहिर सर्वत्र देदीप्यमान है। चाँदकी तरह चारों ओर आनन्द पहुँचा रहा है। उस महापुरुष के परिचय देनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। वेदान्तवारांनिधि हिज होलीनेस परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीः १००८ जगद्गुरु श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी महाराज सूरिजीय्सूर्यकी तरह देश विदेशोंमें पूर्ण विदित तथा धर्मोपदेशसे चाँदकी तरह आह्लादक थे। परम प्राज्ञोंको निरन्तर चकित कर डालनेवाला उनका अनुपम पाण्डित्य सर्वत्र विदित था। आपके परिष्कृत किये हुए दर्शन शास्त्र बड़े २ दार्शनिकोंके आज भी आकर्षण की वस्तु बने हुए हैं। आपमें सरलता निरभिमानता, साधारणता और दया कूट २ कर भरी थी। आप थे सच्चे आचार्य्य ! इस कारण आचार्य्योचित सारे दिव्य गुण आपमें विराजते थे। आपके मंदिर और मठ अनेकों स्थानोंमें हैं पर श्री कांचीमें सबसे पुराना मठ है इस कारण आपके परिचय बोर्डपर सर्वत्र प्रतिवादि भयंकर मठ श्री कांची ही लिखा हुआ रहा करता था। आप सर्वत्र इसी परिचयसे परिचित थे। इसके सिवा कहीं पुष्कर कही बम्बई और कही २ दूसरे २ स्थानोंके नामसे भी लोग उन्हें याद किया करते हैं, मैंने अपने भ्रमणमें ऐसा स्मरण भी होते देखा है।

जन्मस्थान—दक्षिण भारतके मद्रास प्रान्तमें इसीके समीप एक कांची नामकी नगरी है। हिन्दू धर्म शास्त्रोंमें इसकी गणना सप्तपुरियोंमें हुआ करती है। श्री संप्रदायके इतिहासमें इस नगरीका बड़ा भारी महत्त्व है। तपस्वी मार्गवीय अपने प्रिय शिष्य कणिकृष्णको

लेकर इसीकी गुफाओंमें ध्यानरत रहा करते थे। श्री परकालस्वामीने यहीं आकर चौल महाराजके खजानेका शेष रुपया भगवानकी कृपासे चुकाया था। इसीके समीप भूतपुरी है जहाँ श्री भाष्यकार भगवान् रामानुजाचार्य्यने अवतार लेकर वेदान्त ब्रह्मसूत्रपर विशिष्टाद्वैत परक भाष्य लिखा था जिसके कारण इस श्री संप्रदायका नाम श्री रामानुज संप्रदाय पड़ा है। यही काची आपकी जन्मभूमि थी।

इस बातमें इतना अन्तर अवश्य है कि—आपकी माताजी आपके जन्मसे कुछ समय पहिले अपने पिताके घर श्री तिरुपति बालाजी चली गई थीं जो काचीके कुछ ही मीलोंपर है। तिरुपतिबालाजी भी प्रसिद्ध स्थान है। इसे भी सारे हिन्दू अपना तीर्थस्थान मानते हैं सारा वैष्णव समाज इसे भी दिव्य देशकी ही दृष्टिसे देखता है श्री रामानुज और रामानन्दी गण तो इसके लिये दूरदूरसे आते हैं।

यहीं आपका जन्म हुआ था अतः आपके जन्मस्थान होनेका गौरव काची और तिरुपति इन दोनों स्थानोंको एकसाही प्राप्त है। तिरुपतिमें काचीसे इतनी विशेषता और अधिक है कि—हमारे चरित नायककी आखिरी शिक्षा भी यहीं समाप्त हुई थी।

श्री भाष्यकार भगवान् रामानुजाचार्य्यके पुत्र और शिष्य दोनोंही वंशोंमें आप थे—पुत्र १ परपरामें श्री मुडुम्बैनम्बि २ श्री रामानुजनम्बी, ३ श्री मुडुम्बैयाण्डान् ४ श्री देवराज ५ इलैयाल्पाल, ६ मन्नाराचार्य्य, ७ पराकुंशनम्बी ८ मलैक्कुन्नुनवनार ९ और इनके पुत्र अनन्ताचार्य्य तथा इनके पुत्र श्री प्रतिवादी भयंकराचार्य्य थे।

हमारे चरित्रनायक श्री प्रतिवादि भयंकर स्वामीके वंशज हैं इस कारण प्रतिवादि भयंकर कहलाते हैं। ये. प्र. वा. भ. कर स्वामी

भाष्यकार श्री भगवान् रामानुजाचार्य्यकी पुत्र परंपरामें दशवीं पीढीपर थे इस कारण उक्त जगद्गुरु श्री भाष्यकार स्वामीके वंशधर हैं।

इसी तरह उक्त भाष्यकार स्वामीकी शिष्यपरंपरामें आठवीं पिढीपर श्री वरवर मुनि महाराज थे जिन्होंने श्री संप्रदायमें अष्टदिग्गजोंकी स्थापना की है। श्री प्रतिवादि भयंकराचार्य्य स्वामी भाष्यकार स्वामीके स्थापित किये हुए ७४ मठोंमेंसे ३६ वें मठके अधिपति थे तथा श्री वरवर मुनिने भी आपको अष्ट दिग्गजोंमें गिन लिया था।

इस तरह हमारे चरितनायक उस अवतार पुरुषके विद्या और गोत्र दोनों वंशोंमें आ गये हैं जिसके नामकी छाप इस संप्रदायपर लगी हुई है। यह कहना कोई अत्युक्त न होगा कि हमारे चरित नायकको श्री संप्रदायमें दोनों ही गौरव प्राप्त थे। आप श्री भाष्यकारकी वंश परंपरामें भी थे और शिष्यपरंपरामें भी समाविष्ट थे। दूसरे तो केवल एक शिष्यपरंपराकाही गौरव रखते हैं वंशधर होनेका काचित्क ही है। तीसरे आपके पूर्वज अष्टदिग्गजोंसे पहिले भी मठाधिप ही थे।

" उत्तर भारतमें श्री वैष्णवताके प्रचारका अधिक श्रेय " भी आपके पूर्वजोंको ही है। जैसे भगवान् रामानुजाचार्य्यजी महाराजने दक्षिण भारतमें भ्रमण करके श्री वैष्णवताका प्रचार किया था उसी तरह उन्हींके वंशधर एवम् हमारे चरितनायकके पूर्वज आजसे १०० वर्षसे पहिले होनेवाले श्री अनन्त महाराजको है। तैलगूके जिलाधीशने आपको दोसौ सशस्त्र सिपाही रखनेकी अनुज्ञा दी थी जिसके अनुसार आप अपने दोसौ सिपाही और दूसरे २ अनुयायियोंको साथ लेकर उत्तर भारतमें श्री वैष्णव धर्मका प्रचार करनेके लिये चल दिये थे। पुष्करके पुराने रंगजीमें आपकी मूर्ति

विद्यमान है जिसकी सदा नियमित अर्चा होती है। इस मंदिरको भी आपके पूर्वजोंने ही प्रतिष्ठापित किया था। अनन्त महाराजने अनेको राजे महाराजे दीक्षित किये थे जो नहीं भी दीक्षित हुए उनके हृदयोंका परिवर्तन हो गया था। यदि मैं यहाँ यह कह दूँ कि—अनन्त महाराजके तयार किये हुए क्षेत्रमें ही दूसरे आचार्य्योंने श्री वैष्णवता रूपी बीज बोया तो कोई अत्युक्ति न होगी। आपने वरदराज भगवानके ५०००० हजारकी लागतका एक हार भेट किया था तथा दूसरे २ दिव्य देशोंकी भी ऐसी ही सेवाएँ की थीं। आपको अपने प्रचारकी भारी चिन्ता रहा करती थी एक दिन रातको स्वप्नमें वरदराज भगवान्ने कह दिया था कि तुम चिन्ता न करो तुम्हारी पीढीपर तेरे ही नामवाला मेरा अंश पुरुष होगा जो तेरे प्रचारको बहुत आगे ले जायगा। हमारे चरित्र नायकका जन्म इसी वरदानका फल था।

जन्मकाल—विक्रमीय सं. १९३० फाल्गुण कृष्ण ४ शनिवार है। इसी दिन तिरुपतिमें अपने नानाके घर आपका जन्म हुआ था। जब आप माताके गर्भमें थे उस समय उनका स्वास्थ्य अत्यन्त खराब रहता था। उनकी दशा देखकर आपके पितृचरणोंको बड़ी चिन्ता रहती थी। इतनेमें दैवात् एक महात्मासे भेट होगई उसने बताया कि इनके गर्भमें कोई महापुरुष आया है इस कारण इनका स्वास्थ्य इतना खराब हो रहा है। जब उस महापुरुषका जन्म होगया ये उसी समय ठीक हो जायँगी। ठीक वैसा ही हुआ। आपका जन्म होते ही बिना किसी औषधि उपचारके आपकी माता अच्छी हो गईं। आपके पिताजीका नाम श्री कृष्णमाचार्य्य स्वामी था। ये भी प्रतापी

विद्वान और योग्य धर्माचार्य्य थे आपने अपना सारा समय धर्माचार और प्रचारमें ही लगाया था।

बाल्यकाल—परम दर्शनीय और कुतूहल पूर्ण था। और बालक तो माता पितासे अलग होते ही रोते हैं पर यह अद्भुत शिशु एकान्तमें आँख भींचकर सर्वेशके ध्यानमें रत होता था। खेल भी खेलता था तो भगवानकी पूजा और धर्मोपदेशके। एकबार इनके माता पिता अपने जावरा निवासी शिष्यके साथ जातीबार इन्हें भूलकर गड़बड़ीमें कई मील चले गये थे। जब ये याद आनेपर लौटकर आये तो इस विचित्र शिशुको भगवानके ध्यानमें मग्न पाया वहाँके दर्शक लोगोंने कहा कि—बालक बिना एक भी आँसू डाले अचल ध्यानमें बैठा है यह कोई योगी है। अनन्त महाराजके तपसे आपके पुत्रके रूपमें इसने जन्म लिया है।

विद्याध्ययन—काची और तिरपति इन दो नगरोंमें ही मुख्यरूपसे रहा है। आपके निज माता पिता शैशवकालमें ही आपको पढ़ाते रहे आपका विद्याध्ययन प्रारंभ पांच वर्षकी आयुमें हो गया था। माताजीने घरमें ही शब्दरूपावलीसे लेकर रघुवंश तक पढ़ा दिया था।

जब आप इससे कुछ थोड़े बड़े हुए तो आपको काचीमें पासकी एक छोटीसी पाठशालामें प्रविष्ट करा दिया जिसमें एक शैव साधु पढ़ाया करते थे। थोड़े ही दिनोंमें आपने इस पाठशालाकी सारी पढ़ाई समाप्त कर ली।

उपनयन संस्कार—आठ वर्षकी उमरमें किया गया क्यों कि ब्राह्मण बालकके लिये आठ वर्षकी आयुमें ही उपनयनकी आज्ञा है।

उपनयन होते ही आपको वेद पढ़ाया जाने लगा। आप तैत्ति-

रीय शाखामें थे इस कारण सबसे पहिले तैत्तिरीय संहिता ही पढाई गई। इसके सिवा दूसरे याद करने योग्य वेदाङ्गोंके पाठ भी चलते रहते थे।

पिताके साथ दीक्षा और यात्रा—भी पहिली आपने इसी उमरमें पुष्करकी की थी। पिताजीका थोडासा इशारा पाते ही आप पोथीपत्रा बाँधकर झट चलनेके लिये तयार हो गये पिताजीने इसी उमरमे पुष्कर क्षेत्रमें आपको वैष्णवी दीक्षा दी थी। यहाँसे आप उनके साथ २ जैपुर लक्ष्मणगढ आदि कई जगहोंमें कई दिन व्यतीत करके फिर काची चले आये।

पुनः शठकोप पाठशालामें प्रवेश—आते ही करा दिया गया यह विद्यास्थान कॉचीमें ही था। इसमें आप ११ वर्षकी आयु होने तक पढते रहे और काव्योंमें नैषधपर्य्यन्त तथा व्याकरणमें इसी आयुमें सिद्धान्त कौमुदी पूरी की। पीछे—

उभयवेदान्त वर्द्धिनी पाठशालामें प्रवेश—किया। इस शालामें थोडे ही दिनोंमें आपने चम्पू-नाटक-अलकार-छन्द शास्त्र-और व्याकरण पूरा किया। न्याय शास्त्रकी वढाई केवल दिनकरी पर्यन्त तक ही हुई थी। इनके साथ यथासमय वेदोंकी संहिताओंका पाठ और द्रविड दिव्य प्रबन्धोंका भी पाठ चलता रहता था। यहाँ पढते हुए आप साहित्य ओर व्याकरणमें अच्छी प्रोढता प्राप्त कर गये थे। आपकी संस्कृत ओर प्राकृतकी गद्य पद्य रचनाओंको देखकर वृद्ध विद्वान् कहा करते थे। कि—थोड़े दिनोंमें यह सारे भारतमें चाँद वनके चमकेगा सूर्य्यसा प्रकाश करेगा। इनकी उस समयकी बनाई हुई गद्य पद्य रचनाओंको बड़े जीवन चरित्रमें रखेंगे।

आपका विवाह—१४ वर्षकी आयुमें काचीसे ३५ कोश दूर

तिरुपती निवासी श्री गोपालाचार्य्यजीकी कन्याके साथ हुआ था। यद्यपि आपकी विवाहकी इच्छा नहीं थी तो भी गुरुजनोंके आग्रहसे वैवाहिक बन्धनमें बँध जाना पड़ा। किन्तु इससे आपके पठन पाठनमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। स्वाध्याय पूर्वकी तरह अखण्ड प्रचलित रहता था। साथमें अपनेसे कम पढे छात्रोंको पाठ भी विचरवाते रहते थे।

माता पिताजीका वैकुण्ठवास—भी आपकी छोटीही आयुमें हुआ। एकवार इनके पिताजी इन्हें दक्षिणके दिव्यदेशोंकी यात्रामें आतेवार साथ लेगये। ये भी पितृचरणोंकी सेवाका सौभाग्य समझकर सानन्द साथ हो लिये। मार्गमें ही चिरम्बरमें आपके पिताजीके एक अदृष्टव्रण फोड़ा निकल आया। यही अनेकों उपाय होनेपर भी आपकी पितृ छाया नष्ट करनेका कारण बना। इस समय आपकी आयु १५ वर्षकी थी। सौलहवाँ चल रहा था। पिताकी विधिपूर्वक अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त करके माताको साथ लेकर गया करने चल दिये। पतिवियोगसे विकला माताका भी मार्गमें स्वास्थ्य खराब होगया। अनेकों औषधियोंका सेवन कराया गया पर कुछ भी फायदा न हुआ। माताको योग्य व्यक्तियोंके साथ कांची भेजा गया पर यहाँ भी कोई फायदा न हुआ अन्तमें वे भी आपको परमात्माके भरोसेपर छोड़कर सदाके लिये विदा हो गईं। इस समय आपकी आयु १८ वर्षके लगभग थी।

अध्ययनका अवशिष्टकाल—तिरुपतिमेंही पूरा हुआ क्योंकि कांचीमें ठीक प्रबन्ध नहीं हो सका था। यहाँ आपके मातुल श्री रंगाचार्यजी महाराज और उनके भाई अद्वितीय विद्वान् थे। यहाँ रहकर आपने ५ वर्षतक विद्याभ्यास किया। जिसमें उभय वेदान्त मीमांसा और न्याय सानन्द पूरा किया, इसी समय एक " **गीर्वाण**

विद्योल्लासिनी " सभा भी स्थापित की थी। इसमें छात्र और पण्डित वादविवाद और व्याख्यान सम्बन्धी योग्यता प्राप्त किया करते थे। इसका अधिवेशन प्रति शुक्रवार होता था। उस समयकी अनेक कृतियाँ मौजूद हैं जो बड़ा जीवन चरित लिखती बार प्रकट की जायँगी। इसमें बोलते बुलाते किसी विषयका घन्टों प्रतिपादन करना तो आपके लिये एक अत्यन्त साधारण बात थी।

सार्वजनिक जीवन—इसके बाद प्रारम्भ होता है। यहींसे आपके हृदयमें प्रचार और समाज निर्माणकी लौ लगी। यहाँ रहकर आपने हिन्दी अँग्रेजी आदि भाषाओंका अभ्यास तो कर ही लिया था इस कारण विदेश भ्रमण आपके लिये एक साधारण बात थी। अतएव चुने हुए दश पन्द्रह साथियोंको साथ लेकर धर्मप्रचारके लिये यात्रा प्रारम्भ कर दी।

भारतयात्राएँ—भी आपकी इसी समयसे प्रारम्भ हो गई थीं। कोई व्यापक होती थी तो किसीमें भारतके एक दो प्रान्तोंमें प्रचार करके ही वापिस आ जाते थे। कुछ रेलसे हुईं तो किसीमें खुश्कीके मार्गका अवलम्ब लिया गया। सम्वत् १९५१ में आप पिताके विना प्रथम प्रचारके लिये चले थे। इसमें हैदराबाद, सोलापूर, और पूना होते हुए बम्बई पधारे। यहाँके लोगोंने आपका बड़ा स्वागत किया। नारायण वाडीमें बड़े समारोहके साथ सभा हुई। पहिले दिन विशिष्टाद्वैत दूसरे दिन भक्ति और तीसरे दिन परतत्त्व निर्णयपर व्याख्यान दिया यह और उस समयकी चर्चा विजयपत्रिका ये दोनों जे. बी. प्रेस कल्याणमें मुद्रित हैं। यहाँसे उज्जैन गये वहाँ आपने भस्मधारणपर जो विचार प्रकट किये वे उक्त प्रेसमें 'भस्म धारण विचार'के नामसे मुद्रित हैं।

ता० १८ फर्वरी सन् १९१२ में जयपुर पहुँचे यहाँ भी आपने अपने उपदेशोंसे सारे शहरको गुँजा दिया। इसके वाद कानपुर प्रयागराज होते हुए रीवाँ राजधानीमें चले आये। यहाँ रीवा नरेशने आपका अत्यन्त प्रेमके साथ चिरस्मरणीय स्वागत किया। आपने कई दिनोंतक राजा और प्रजा दोनोंको कर्तव्यनिष्ठ बनानेके लिये दिव्य उपदेश दिये। आपके इतिहासमें रीवा नरेशकी नम्रता और वैष्णवताका उच्च उदाहरण रहेगा। इस यात्रामें आप कलकत्ता जगन्नाथपुरी सिंहाचल और श्री कूर्म भी पधारे थे सर्वत्र धर्मोपदेश देते हुए ताः २ जुलाई सन् १९१२ को फिर काँची वापिस आ गये।

इसके वाद आपकी बड़ी २ यात्राएँ हुईं। आप ऐसे २ स्थानोंमें भी धर्म प्रचारके लिये पहुँचे हैं जहाँ पानी मिलना भी कठिन था। पथ भी दुर्गमवनोंमें होकर जाता था। आपके साथ पैदल यात्रा करनेवाले प्राणियोंके प्राण भी आपके ही तपसे सुरक्षित रहते थे। कभी २ शेर और भालुओंके शब्द अधिक कौलाहल पैदा कर गुजरते थे। सर्वत्र आप धर्मोपदेश देते रहते थे। और तो क्या? ग्रामीण जनता भी दश दश कोससे चलकर आपके दर्शन करने आती थी। वनचर भील भी आपके उपदेशोंके सुननेमें तत्पर हुआ करते थे। जहाँ आप गए शहरोंमेंसे कोई भी ऐसा शहर नहीं था जिसकी जनताने आपका स्वागत सत्कार न किया हो श्री वैष्णव ही नहीं दूसरे लोग भी पूरी सख्यामें आपके स्वागतमें भाग लेते थे। आपका शरणागतितत्त्वका उपदेश तो इतना आकर्षक होता था कि उसे जो भी कोई सुनता अपनेही धर्मका उपदेश समझता था। कई उच्च मुसलमान आफिसरान तो आपके इस उपदेशसे इतने आकर्षित हुए थे कि अपने इलाके

से ५० मीलतक भी अपनी ड्यूटी अदा करके आये बिना न रहे। कभी कभी आपके कॅम्प जंगलोंमें भी लगा करते थे जिसकी शोभा देखते ही बनती थी। भोजनके समयका आपका यही नियम था कि जब सारे लोग आजाएँ सबकी कुशल क्षेम पूछलें; उस समय शान्त प्रसन्नचित्तसे प्रसाद पाने बैठते थे। आपने बद्रीनारायणकी यात्रा भी पैदल ही की थी।

यंत्रालय पत्र पत्रिकाएँ और शास्त्रसेवा—में आपका काची रहनेका समय उपयुक्त होता था। १८९८ ई. में श्री सुदर्शन प्रेस नामक यंत्रालय स्थापित किया इससे शीघ्र ही एक शास्त्रमुक्तावली नामक मासिक ग्रन्थावली प्रकाशित करने लग गये इसके तीन मास बाद आपने उसी यंत्रालयसे मंजु भाषिणी नामक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया जो थोड़े ही दिनोंमें साप्ताहिकके रूपमें हो गया। इन कार्य्योंके अतिरिक्त न्यायशास्त्रका उद्धार करनेके लिये न्यायमुक्तावली ग्रन्थमालाका भी प्रकाशन करने लग गये जिससें न्यायशास्त्रके अलभ्य ग्रन्थ निकला करते थे। इसके कुछ दिनोंबाद द्राविडभाषाकी पत्र पत्रिकाओंका प्रभाव देखकर उसकी भी एक वनमालिका नामक मासिक पत्रिका निकलना आरंभ कर दिया। यह पत्र एक वर्षतक खूब चला पीछे कई कारणोंसे बन्द कर दिया था। मासिक पत्र वैदिक सर्वस्वके तो आप अन्ततक भी प्राण रहे थे।

काचीमें एक "वेदान्त वैजयन्ती पाठशाला" भी स्थापित की जिसमें स्वयम् भी पढाते और कई अध्यापक भी नौकर रखे थे। आयुर्वेदके उद्धारके लिए एक सौलह बीघाका बगीचा लगवाया था। कई वैद्य भी नौकर रखे थे तथा एक आयुर्वेदके पत्रका भी प्रकाशन किया था यह आयुर्वेद भास्कर भी कई दिनोंतक चलता रहा था।

सन् १९०२ में पुरुषसूक्तका विष्णुपरक भाष्य तथा रामायणपर वाल्मीकी भावदीप नामक ग्रन्थ लिखा जो आज भी सुदर्शन प्रेससे मिलता है। इनके सिवा अपने प्रेसका आपने यह नियम बना रखा था कि जिन उपयोगी ग्रन्थोंका प्रकाशन दूसरे प्रेस नहीं कर सके हैं उन्हें इस प्रेससे प्रकाशित किया जाय। इस प्रेससे आपके परिष्कारमें १०० से भी अधिक ग्रन्थ निकले होंगे।

मैं जब आपके साथ था उस समय आपने मुझे दिव्य सूरि चरितकी हिन्दी टीका लिखनेकी आज्ञा दी थी जो आधेसे अधिक आपके प्रेसमें आपने अपने जीवनमें ही प्रकाशित कर दी थी।

इसके सिवा और भी मेरे लिखे छोटे २ ग्रन्थोंको अपने प्रेससे प्रकाशित किया था और मुझे ही लिखनेकी सेवा दी थी। आपके साथ दोड़ामें मैंने उपनिषदोंपर रंग रामानुज भाष्यके अनुसार टीका लिखी थी जिसकी अशुद्धियोंका परिमार्जन आपको ही दिखाकर किया गया था। आप दूर बैठे हुए भी मुझे ग्रन्थ लिखनेमें सदा सहायता देते थे। जो विषय मुझसे नहीं लगते थे उन्हें मैं पत्रोंसे ओर जाकर पूछ लेता था। जिनमेंसे कुछ एक पत्र मेरे पास इस समय भी उपस्थित हैं। आपने आजसे दो वर्ष पहिले मुझे श्री भाष्यकी व्यापक हिन्दी टीका लिखनेकी आज्ञा दी थी और परीक्षाके तोर पर 'तत्तु समन्वयात्' सूत्रके भाष्यकी टीका बनवाकर मांगी भी थी।

मैंने जो टीका भेजी उसपर बड़ा सन्तोष प्रकट किया और अपना विचार वैदिक सर्वस्वमें भी प्रकट कर दिया। यदि मुझे यह पता चल जाता कि अब यह विद्या और तपोंकी मूर्ति मेरे पास न रहेगी तो मैं किसी भी विघ्नप्रियके विघ्नोंकी चिन्ता किये उनके काममें जुट जाता।

इसके लिखनेका तात्पर्य्य यह है कि—आपके हृदयमें जीवनकी

अन्तिम घड़ियों तक भी विद्या प्रचार और शास्त्र सेवाका प्रेम बना रहा है तथा जीवनकी अन्तिम घड़ियों तक भी इससे विरत नहीं हुए हैं।

श्री वैष्णव सम्मेलन—का बीजारोपण भी आपनेही किया था एवम् सर्व प्रथम होनेवाले इलाहाबादके समेलनके आप ही सभापति चुने गये थे। सभास्थल मेयोहाल रखा गया था। जो विशाल जन-समुदायसे सारा भर गया था। नगरमें आपका बड़ा भारी शाही जुलूस निकला था। बाहिरसे ७०० के करीब श्री वैष्णव प्रतिनिधि गण आये थे। दूसरे प्रतिष्ठित आगन्तुकोंमे सारी वैष्णव सम्प्रदायोंके आचार्य श्री संप्रदायके पीठाधिप और महाराज रीवा. छत्रपुर आदिके साथ महामना मदनमोहनजी मालवीय भी थे वे आज एक ही व्यक्ति हैं जिस राजनैतिकपर कि सनातनधर्मी जनता विश्वास करती हो।

सन् १९१२ दूसरा वैष्णव समेलन श्री जगन्नाथपुरीमें हुआ यह अवसर पुरीके बड़े भारी मेलेका था इस कारण एक तो भीड़ थी ही दूसरे संमेलनके आगान्तुकोंने पुरीको भर दिया। यहाँ जुलूस मीलों लम्बा था। सभास्थानमें दूसरे आगन्तुकोंके अतिरिक्त कलकत्ता हाई-कोर्टके न्यायाधीश मि. उडर तथा जिलाधीश मय मजिस्टेटोंके थे। जिलाधीशने बड़े ही चमत्कारिक शब्दोंमें आपका स्वागत किया था। यहाँसे चलती बार आप अग बग होते हुए आध्र और तैलगमें भी धर्मप्रचार करने पहुँचे थे।

तीसरा अधिवेशन आपके ही अधिपतित्वमें जावरा मनाया गया था। यह यद्यपि मुसलमानी रियासत है पर तो भी आपके स्वागत सत्कारमें सारे राज्यकर्मचारी व्यस्त थे। काँग्रेसके पडालकी तरह अधिवेशन भवन बनाया गया था। यहाँका जुलूस मीलों लम्बा हो

गया था। रियासतके सारे जागीरदार तथा सीतामऊ आदिके राजा संमिलित हुए थे।

चौथा अधिवेशन कलकत्ता नगरमें हुआ था। इसकी स्वागत चर्य्या और विद्वानोंके सत्संग भी जगद्गुरुके इतिहासमें खास स्थान रखते हैं। आपका यहाँ कोसों लम्बा जुलूस निकला था। 'सर' गुरुदास बनर्जी, बाबू मोतीलाल घोष, कविराज गणनाथ सेन एम. ए. श्रीयुत नरेन्द्रसेन वसु, सत्यनाथ गोस्वामी, और दीन दयालुजी व्याख्यान वाचस्पति आदि सारे प्रतिष्ठित व्यक्ति सामिल हुए थे। इस जगह आपको कलकत्ताके सारे महोपाध्याय और तीर्थोने मिलकर आपकी अलौकिक प्रतिभा देखकर 'वेदान्तवारांनिधि' उपाधि दी थी। इन स्थानोंके सिवा और भी अनेको जगह आप अध्यक्ष बनाये गये एवम् इसी प्रकार स्वागत सत्कार हुआ जिसे लिखनेसे लेखका कलेवर बहुत वड़ा हो जायगा। आपका लगाया हुआ यह वृक्ष आज भी भारत व्यापक होकर लहलहा रहा है। जिसका अभी प्रयागमें पुरीके महन्तजीकी प्रमुखतामें अधिवेशन हुआ है। मेरे सामने आपने अपनी बीमारीके समय भी मुझसे लिखाकर दो घन्टे परिश्रम करके आशीर्वाद भेजा था। इन दिनोंमें आप केवल अंगूरके रसपर ही रहते थे तथा अन्तर्मुख स्फोटसे अत्यन्त पीडित रहते हुए भी कभी आह न करते थे।

जीर्णोद्धार और दिव्यदेश—आपने अनेकों किये। दक्षिण भारतमें श्री प्रतिवादि भयंकर मठ काचीका जीर्णोद्धार आपने ही कराया था। वड़ा भारी परीश्रम उठाकर अमित द्रव्य खर्च करके उक्त मंदिरका ऊँचा गोपुर बनाया था। आपके पूर्वजोंके समयका अमझराके स्वतंत्र शासकोंका बनाया हुआ श्री राममंदिर था जिसका

जीर्णोद्धार भी आपके ही हाथसे हुआ था। सिवा इन दो मंदिरोंके और भी अनेको दिव्य देश हैं जिनका जीर्णोद्धार अपने द्रव्यसे अपने प्रयत्नसे और अपने आप किया है। छोटे २ रामानुज कूट और मंदिर तो सैकड़ों ही आपके हाथसे बने होंगे जिनकी संख्या दिखानेसे इस छोटेसे लेखका कलेवर बहुत बढ़ जायगा। यों तो आपने अपने मारवाड़में कई दिव्यदेश बनाये हैं पर रौलका दिव्य देश उन दिव्य देशोंमे है जिसे बनवाया भी और जिसके लिये भगवान् भी दक्षिणसे जाकर लाये और अद्दिग्ग प्रबन्धके लिये धनसंचय भी किया था। आपका बम्बईके दिव्यदेश श्री वेंकटेशकी स्थापनाका एक बड़ा भारी प्रयत्न है। इसमे आपके प्रचार और शिष्य मण्डलका अधिक बल लगा। इसमें अबतक आठ लाख रुपया खर्च हो चुके होंगे। इन सबोंकी सुन्दर व्यवस्थाके लिये आपने अपनी इच्छासे कमेटी भी बना दी हैं जिनसे सुप्रबन्ध और धनकी रक्षा बनी रहे। आपके लिये मोलासर (जोधपुरके) सोमाणी परिवारने भी एक बडा दिव्य देश बनाया है।

राज्यसम्मान—भी आपका कम न था। प्रजाकी तरह भारत गवर्नमेंट और वर्तमान नरेश भी आपको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। जब कभी आप किसी रियासतमें जाते तो भारत सरकारकी आज्ञाके अनुसार ए. जी. जी साहिब रियासतोंको हुकम लिख देते कि बँगले और पाँच सिपाही भी देकर एसा ध्यान रखना कि इन्हें किसी प्रकारका कष्ट न हो। जब ब्रिटिश इलाकेमें आपकी यात्रा होती तो उसमें भी जिलाधीशोंके नाम होम मैंम्बरोंके हुक्म निकल जाते थे। जिससे सर्वत्र आपका शाही स्वागत होता चलता था। कोई एसी रियासत नहीं जहाँ आप गये हों और सम्मान न हुआ हो सर्वत्र सम्मान ही हुआ। उदयपुर जोधपुर, जयपुर सीकर, धार, गवालियर, हेदराबाद आदि

सर्वत्र राज्यकी ओरसे शाही स्वागत हुआ। राजा फौजें और मुसाहिब लोग अगवानीके लिये आते थे। एक बार एक छत्तीस गढके राजाने थोडी उद्दण्डता कर ली थी। जिसके बदलेमें उसे गवर्नमेंटके दवावसे मय हर्जानेके क्षमा माँगनी पड़ी थी।

भा० स्व० संघ और बनारस—में भी आपका अच्छा सम्मान होता था। इस सस्थाका बड़े गर्वनरसे मिलनेवाला डीपूटेशन भी आपकी अध्यक्षतामें बना था। बनारसके विद्वानोंने भी ब्राह्मण समेलनके समय अच्छा प्रेमप्रदर्शित किया था। एक प्रकाण्ड विद्वान्के रूपमें यही बनारस आपको चमकानेवाली थी। इसी बनारसमें विशिष्टाद्वैतका प्रतिपादन करनेसे आपकी प्रोढविद्वत्ता चमकी थी।

विद्याप्रेम—परम सराहनीय था। कोई भी विद्वान किसी भी सम्प्रदायका हो आपका प्रवृत्त होनेवाला सम्मान इसबातको नहीं देखता था। न दशा और परिस्थितिका ही कायल था। विद्वान् होना चाहिये वह जिस कोटिका हो आप उसका वैसा ही सम्मान करते थे। जब कभी कहीं जाते तो वहाँसे जातीवार विना विद्वानोंका सम्मान किये विदा न होते। मैं जब साथ था तो मुझसे कह देते कि योग्य विद्वानोंका उनकी योग्यताके अनुसार सम्मान कर दो। आप सनातन धर्म वैष्णवता और शरणागत तत्वके प्रचारके सतत पुजारी थे। तो भी आपमें पक्षपात नहीं था। आपकी प्रकृति इतनी सौम्य थी कि सबके लिये एकसी वनी रहती थी।

शिष्यवर्ग और नौकर—उत्तम व्यवहारसे व्यवहृत होते थे। किसी नौकरके भारी अपराधपर भी उसपर विना ही नाराज हुए उचित शिक्षा दे दिया करते थे।

आपके क्रोधी सेवक भी आपके व्यवहारोंको देखकर

शान्त हो जाते और उन्हें सर्वस्व समझने लगते । आपके शिष्योंकी संख्या भी आपके संप्रदायके अन्य सब आचार्योंसे अधिक है। जिसका अधिकाश भाग आपकी विद्वत्ता और तप त्यागपर मुग्ध होकर बना था । पर बढानेका कोई शोक नही था, न असम्भवमें किसीको दीक्षा ही देते थे । एक बार भोजनके बाद एक रानीने शिष्य होनेकी इच्छा प्रकट की थी जिससे मेरे आगे यह उत्तर दिया था कि अब समय नहीं दूसरे दौरामें देखा जायगा।

तप त्याग और चमत्कार—भी कम नहीं थे आपका भोजन योगियों जैसा नियमित था । आप अन्न, तीन छटाकसे अधिक नहीं खाते थे । दिन रातमें बहुत थोड़े समय सोते थे । सारा समय स्वाध्याय और भजनमें ही बीतता था । मैंने अनेकों स्थानमें वे चमत्कार देखे जिनसे यह कह देना अत्युक्ति नहीं कि—यह भगवान् रामानुजाचार्य्यजीका ही दूसरा अवतार था । रातके समय सारा कैंप सोता और आप इस प्रकार जगते रहते कि कोई जान न पाता।

शरीर वृद्ध हो गया था व्रतोपवासोंके कारण कभी मोटा तो हो ही न पाता था फिर भी बलकी कमी नहीं थी। बलसाध्य काम करनेमें उन्हें मैंने कभी थकता नहीं देखा था । मंत्रसिद्धिके विषयमें तो यही कहूँगा कि हयग्रीव भगवानकी आपपर विशेष कृपा थी। जिससे आवश्यकताके अनुसार तीनों कालोंकी सूझती थी।

उनकी आवश्यकता—बडी भारी थी । क्यों कि आज सनातन धर्मके सकटका समय था । शारदा एक्टके विरोधमें आपने भारतव्यापी दोरा किया था और जहा २ पधारे थे वहासे इस धर्मनाशक कानूनके विरोधमें तारोंका ताँता लगवा दिया था। रियासतोंमें तो आपके प्रचारका यह असर हुआ था कि—ऐसे धर्मद्रोही कानून जहाँवे

तहाँ पड़े रह गये थे। आज वे स्वस्थ होते तो कभी भी बैठे रहने वाले नहीं थे—अवतकका सारा समय धर्मप्रचारके अनवरत परीश्रममें बीतता आपसे सनातन धर्मको भी बड़ी २ आसाएँ थी।

हा दुर्देव—तेरे आगे किसीकी भी नहीं चलती जब तू किसीको कुछ करना चाहता है तो उसके अनेक बहाने बना लेता है। बायें पैरमें निकलनेवाला फोड़ा तो एक वहाना मात्र था जो सं. १९९३ में छपरामें आपके इस लोकसे जानेका कारण बना। वास्तवमें वे स्वर्गीय थे उनका दरबार श्री वैकुण्ठनाथका दरबार था वे वहाँसे आये थे और अपनी चमकके साथ भगवानका पथ दिखाकर वहीं चले गये। जिन्होंने उन्हें समझा या नहीं समझा वे सब आज आपके वियोगसे व्यथित हैं। छपराकी रानी साहिया धन्य हैं जिन्हें आपके अन्तिम दर्शन हुए। आपके जीवनसे मेरे अनेक उपकार हुए मेरे शरीरपर आपकी निर्हेतुक कृपा थी औरोंको आपके इस प्रकारके वियोगका दुख तथा मुझे दो दुख हैं। एक तो आपके अन्तिम आदेशका आपके जीवनमें पालन न कर सका। तथा इस प्रकार आपको खोकर नितान्त एकाकी असहाय रह गया। मै अपने हार्दिक दुखको किन्ही भी शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। आपके दुखी परिवार और प्यारे शिष्योंके साथ सच्ची सहानुभूति पूर्वक समवेदना प्रकट करता हूं। भगवन्! मेरे महाराजको मुझसे छीनकर अब आप प्रसन्न हो लो। मैं उनके किये गये उपकारोंकी स्मृति ही लिए बैठा रहूंगा।

तेरी मर्जी!

दुःखी माधवाचार्य्य रिसर्च स्कालर

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

। श्रीमद्-अनन्त शतकम् ।

॥ भाषाटीका समेतम् ॥

अस्ति श्रीवत्सगोत्रं द्रविडजनपदे ब्रह्मविद् वैष्णवानाम् ।
श्रीमद् रामानुजाद्यैः कृतिभिरभिमतं मानितं माणितंच ॥
तस्मिन् श्रीकृष्णनामा ग्रह शशिशतके वैक्रमेवत्सरेऽभूत् ।
आचार्य्यो येन तेने मनुज समुदये पञ्चसंस्कार दीक्षा ॥१॥

द्रविड देशमें एक परम प्रशस्त तथा श्री वैष्णव समाजके बीच सर्वमान्य ब्रह्मवेत्ता 'श्रीवत्से' गोत्र है । माननीय श्रीरामानुजाचार्य्य आदि आत्मदर्शी परम विद्वानोंने इसी गोत्रमें जन्म लेकर इसका सम्मान बढाया है इसी वंशमें श्रीमान् कृष्णाचार्य्यजी महाराज १९ वें विक्रमी शतकमें उत्पन्न हुए जिन्होंने जन समूहोंमें पंच संस्कारोंकी दीक्षाका विस्तृत रूपसे प्रचार किया था ॥ १ ॥

टिप्पणी—१ भगवान् श्री प्रतिवादि भयङ्कराचार्य्यजी महाराज, भाष्यकार श्री रामानुजाचार्य्यकी ही वंश परंपरामें उत्पन्न हुए थे । ७४ मठोंमेंसे जो मठ भाष्यकार स्वामीने अपने पुत्रको दिया था उसके अध्यक्ष तो थे ही पर श्रीवरवर मुनिने भी आपको अपने अष्ट दिग्गजोंमें चुन लिया था । हमारे इस शतकके चरित्र नायक इसी वंशके उज्ज्वल रत्न हैं ।

तस्य प्रज्ञानमूर्ते र्हरिपद सुधया विष्णु भावं गतस्य ।
सत्संकल्पस्य पाकः समजनि तनयो धर्मपत्न्यामनन्तः ॥
दम्भोलिर्दाम्भिकानामशरणशरणः शोभनानां शुभंयुः ।
सच्छास्त्राम्भः पिपासा प्रशमनकृतये योऽस्त्यगस्त्यायमानः ॥

आचार्य श्री कृष्णाचार्य्यजी स्वामी परमबुद्धिमान् तथा सकल शास्त्र निष्णात थे। भगवानके चरणामृतकी दयासे इनका मन सदा भगवानके चरणोंमें ही लगा रहता था। श्री वरदराज भगवानके पूर्वके वरदानके अनुसार इनकी सती धर्मपत्नीमें हमारे चरित्रनायक पूज्यपाद् प्रातःस्मरणीय परम श्रद्धास्पद प्रतिवादि भयङ्कर मठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी महाराजने अवतार ग्रहण किया। यह श्रीरामानुजाचार्य्यजी महाराजके अंशधारी महापुरुषका जन्म होना यह श्रीकृष्णाचार्य्यजी महाराजके उत्तम सकल्पोंकाही फल था।

आचार्य्यप्रवर श्री अनन्ताचार्य्यजी महाराज दम्भी पाखण्डी पापियोंके लिये तो महर्षिप्रवर दधीचिके तपसे तेजित हुए इन्द्रवज्रके समान थे। पर जिन निरीह निराश्रितोंका संसारमें कोई त्राण नहीं था उनके लिये अचल शरणके देनेवाले थे। इनकी-दयादृष्टि सर्वदा अचल थी। जिनके सदाचार परम उत्तम और स्वभाव सौजन्य पूर्ण था उन दिव्य शोभन पुरुषोंके लिये तो इनके दरबारमें चारों ओरसे अच्छाही अच्छा था। जिन प्यासोंको उत्तम शास्त्रोंके पढ़नेकी प्याससे निकलता लगी हुई थी उनके लिये तो आप अटूट अगाध शास्त्र वारानिधिही बने हुए थे ॥ २ ॥

श्री भाष्याचार्य्य पादाम्बुज चतुस्सप्ततिः श्रीमठानाम् ।
तस्यास्ते दक्षिणस्यां प्रतिकथक भयोद्भावनो धर्मपीठः ॥

मान्वोऽधिष्ठाय तं ये निरय भयवतां वारयामासु रुग्राम् ।
भीतिं तानत्यशेत श्रुतिधृतिकृतिभिः शेमुषीमाननंतः॥ ३ ॥

श्रीभाष्यके निर्माता भगवान् रामानुजाचार्य्यने दक्षिण भारतमें ७४ पीठ स्थापित किये थे। इनके पीछे इन्हीं मठोंमेंसे भगवान् वरवर मुनिने आठ मठोंको मुख्यरूपमें स्थान देकर उनका गौरव चढ़ाया। इन आठ मठोंमें श्री प्रतिवादि भयङ्कर मठ भी है। श्री संप्रदायके रक्षक प्राचीन आचार्य्योंने इसी मठकी गद्दीपर बैठकर प्रतिवादियोंके भयङ्कर भयको मिटाया तथा जिन लोगोंको नरकके पतनका भय था उन्हें उससे मुक्त किया था।

हमारे परम बुद्धिमान चरित्रनायक आचार्य्यने भी इसी सिंहासनपर विराजमान होकर, वादियोंके कुवादोंके भयको तथा श्रद्धालु धार्मिकोंके नरक पतनके भयको अपनी अलौकिक प्रतिभा तथा विस्मापन तप त्यागोंसे सदाके लिये नष्ट कर दिया॥ ३॥

याते ताते पदान्तं परभुवि परमव्योमनाम्ना प्रसिद्धम् ।
गुर्वीं पैतामहीं यो धुरमनुवहते विष्णुकाञ्ची पुरस्थः ॥
येचिद् भेदप्रवाहाः सुकृतिभिरुदिता व्यास बौधायनाद्यैः ।
तद्वाचा स्फोर्य्यमाणा विविधबुध दशां दिग्भ्रमान् वारयन्ति ४

जब पिताजी अपने जीवनके उत्तम अनुष्ठानोंको सानन्द पूरा करके परमव्योम नाम विष्णु भगवानके परमपदको चले गये तो आपने श्री विष्णुकांचीके प्रतिवादि भयङ्कर मठपर विराज होकर परंपरागत सारे भारोंको अपने ऊपर धारण किया।

भगवान् कृष्ण द्वैपायन और उनके आत्मगत भावोंके अनुसार बौधायनवृत्ति-लिखनेवाले व्यास शिष्य बौधायन आदि समर्थ विद्वा-

नोंने अपने पुनीत ग्रन्थोंमें जिन छिपे वैदिक सिद्धान्तोंको प्रस्फुट करके दिखाया है वे हमारे चरित्रनायककी वाणीसे व्यक्त होते ही ऐसे निर्मल बन गये कि—जिनके देखनेसे अनेकों कृतप्रज्ञ विद्वानोंके नेत्रोंका दिग्भ्रम दूर हो जाता है ॥ ४ ॥

उद्यानेषु प्रवक्तृष्ववनिपतिषु सल्लेखकेषु क्रतूषु ।
भक्तेष्वेकान्तिकेषु प्रणतकरशिरः श्रेष्ठिषु श्रेणिमत्सु ॥
संस्था संस्थापकेषु व्रतिषु कृतिषु वा वेद्य विद्यालयेषु ।
क्वासौ कैः कैर्न दृष्टो रघुपतिचरितेष्वाञ्जनेयो यथान्यः ॥५॥

जिस प्रकार भगवान रामके चरित (रामायण) में बाग, वक्ता, राजा, लेखक, यज्ञ, एकान्तिक भक्त, संस्थाओंके संस्थापक, व्रती, कृती, जानने योग्य वस्तुकी विद्याके स्थान, और शिर हाथ झुकाके प्रणाम करनेवाले श्रेष्ठ सज्जनोंकी लैनमें हनुमानजी मिलते और देखनेमें आते हैं। इसी तरह हमारे आचार्यचरण श्रीमद् अनन्ताचार्यजी सूरि कभी धर्मप्रचार करते हुए घोर जंगलोंमें कैंप डाले मिले तो कभी राजाओंमें राजधर्मोका उपदेश देते हुए पाये। कभी कलम उठाकर ऐसे २ विस्मयकारक लेख लिखते जिन्हें एक महा लेखक भी न लिख सके।

जहां भगवान्‌की संनिधिमें ईश्वरके एकान्ती भक्त लैन लगाते थे वहां आप दोनों हाथ फैलाकर भगवानको साष्टांग करते मिलते थे। भारतकी अनेक धार्मिक संस्थाओंको आपने जन्म दिया अनेकों बड़े २ विद्यालयोंको योग्य समिति देकर उन्हें आगे बढनेमें निर्बाध कर दिया।

अपने शरीरसे ऐसे २ कठिन व्रतोंका सानन्द पालन किया जिन्हें

अच्छे २ कृतप्रज्ञ भी निभानेमें कठिनताका अनुभव करें। भारतके अनेकों भव्य पुरुषोंने इन्हें इन कामोंको भावावेशके साथ आत्मासे करते देखा। इनमें कोई स्थल ऐसा बाकी नहीं रहा जहां आप देखनेमें न आये हों। देखनेवालोंने आपको प्रत्येक स्थलपर देखा और आप वहां अपने करनेके कामोंको करते हुए ही मिले ॥ ५ ॥

भाषासु प्रचुरासु यस्य सुमतेः सर्वाधिकारोऽभवत् ।
अन्यूनानतिरिक्त शब्दरचना यस्मिन् परं कौशलम् ॥
वाक्शैली प्रतिभावती बलवती यद्धस्तगा लेखनी ।
तस्मै सत्पुरुषाय न स्पृहयति ब्रूया अनन्ताय कः ॥ ६ ॥

इस बुद्धिमानका विविध देशोंकी विभिन्न प्रकारकी भाषाओंपर उसी प्रकार अधिकार था जैसा कि—उस देशके कदीमी निवासियोंका होता है। शब्दोंकी रचनामें उनकी विशेष कुशलता तो यह थी कि—शब्द तुले हुए ही निकलते थे न तो आवश्यकतासे कम ही होते थे और न अधिक ही निकलते थे।

व्याख्यानकी शैली असाधारण प्रतिभा रखती थी और इतनी बलवाली होती थी कि सुननेवालोंके हृदयपर तत्काल असर होता था। अपने थोड़ेसे जीवनमें अनेकों महाग्रन्थ लिखे थे उनकी लिखनेकी शैलीकी क्या प्रशंसाकी जाय, प्रत्येक विषयके सर्वाङ्गपूर्ण लेखोंमें पूरे सिद्धहस्त थे।

अब ओ सुनने देखनेवाले ! तू ही बता दे कि—ऐसे सत्पुरुष श्री अनन्तचरणोंको कौन नहीं चाहेगा। उनके गुण ही ऐसे थे जिनसे सभी देशोंके सभी धर्मों और सारी समाजोंके सभी समजदार लोग सारे भेदभावोंको दूर करके उनकी हृदयसे इज्जत करते थे ॥ ६ ॥

मुम्बा वैष्णव मण्डले बुधजने व्याख्याय विश्राम्यति ।
कर्णेषु प्रतिवाहिता सदसि या नारायणीयो गिरः ॥
शृण्वन्तः स्म वदन्ति किं श्रुतवने पुंस्कोकिलः कूजति ।
किं वा शब्द सरस्वती प्रवहते विद्याविधातुर्मुखात् ॥ ७ ॥

बम्बईके श्रीवैष्णव संमेलनके समय जब बड़े बड़े विद्वान् अपने अपने सुन्दर व्याख्यानोंको देकर अपने अपने आसनपर बैठ गये उस समय आप अपनी अलौकिक वक्तृता देने लगे। सुननेवाले लोगोंके कानोंमें भगवद् गुण प्रतिपादनकी अमृतमयी धारा गिर रही थी। जिससे सबके हृदय तृप्त हो गये। लोग सुन २ कर कहने लगे कि—'श्रुतिके सुन्दर सरस बगीचेमें क्या यह पुंस्कोयल कूक रहा है ? अथवा—विद्याओंके विधाता स्रष्टा चतुर्मुखके मुखरूपी पुनीत उद्गमसे शब्दराशिकी पुनीत सरस्वती पूरे प्रवाहके साथ बह रही है ॥ ७ ॥

केचित् तरसविधे धयन्ति सुधियोऽसद्वाद सिन्धोः सुधाम् ।
सद्वादानपरे दशोपनिषदां स्याद्वादविध्वंसकान् ॥
अर्थं वागनुधावति क्वचिदहो वाचं तथार्थः क्वचित् ।
आचार्य्यस्य समंद्वयं तदपि सः प्राक्पक्ष मुत्प्रेक्षते ॥ ८ ॥

जिन सिद्धान्तोंका पढ़ना उनके खण्डन करनेके लिये परमावश्यक होता है जिसे कि खण्डन किया जाता है उस वादका असत् होना भी परमावश्यक है क्योंकि—सत्पुरुष असद्वादोंकाही खण्डन करते रहते हैं सद्वादोंका नहीं। उनके पास अनेकों विद्वान् इन असद्वादोंके सिद्धान्तोंको पढ़ते थे जिन सिद्धान्तोंको असद्वादरूपी विस्तृत समुद्रका अमृत कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। जिनसे नास्तिकोंके वादों अपेक्षा वादों तथा मूर्खोंके वादों यानी कुत्सित सिद्धान्तोंका खण्डन

होता है ऐसे दशों उपनिषदोंके सत्य सिद्धान्तोंको दूसरे समझदार विद्वान् दूधकी तरह पिये जाते थे ।

मनुष्य जिस बातको कहना चाहता है जिस पदार्थको दूसरेके लिये समझानेकी इच्छा करता है वह उसीके अनुसार ऐसे शब्दोंका प्रयोग करता है जिनसे वह अर्थ परिस्फुट प्रतीत हो जाय । जब किसी श्लोक आदिका अर्थ करना होता है तो उसमें आये हुए शब्दोंके अनुसार ही किया जा सकता है तथा मुख्य और अमुख्य दोनों प्रकारके अर्थोंको बोधन करनेवाले ये शब्द ही हैं इनके सिवा दूसरा कोई भी साधन नहीं है जिससे वक्ताके आशयको पकड़ा जा सके । पर हमारे आचार्य्यचरणोंमें यह विशेषता थी कि—' शब्द और अर्थ दोनों एकही साथ चलते थे, इसका तात्पर्य्य यह है कि—उनकी शब्दविन्यास शैली इतनी उत्तम होती थी कि मुखसे निकलते ही उनका तात्पर्य्य समझमें आ जाता था । इसमें भी सारे संसारके वक्ताओंसे यह विशेषता अवश्य थी कि—बोलनेके साथ यह भी समझमें आजाता था कि—' आचार्य्य प्रवर यह बात इस बातको लेकर कह रहे हैं । इसका पूर्वपक्ष यह है जिसका कि—आप उत्तर दे रहे हैं ॥ ८ ॥

आचार्य्यो मरुमत्स्य दर्शन परावृत्तः प्रकम्पन्बलम् ।
आतिथ्याय पथि स्थितोदयपुराधीशेन सम्प्रार्थितः ॥
दुर्मन्त्र ग्रह दूषिते नृपजनै र्वामालये वासितः ।
राज्ञाऽयोजि गजेन राजसदने सम्मार्जितं सत्कृतम् ॥ ९ ॥

एक बार हमारे आचार्य्य प्रवर । अपने शिष्यवर्गको आनन्द देते तथा अनुजीवी वर्गको बढ़ाते हुए मारवाड़ और मत्स्य (जयपुरादि) देशसे

लौट रहे थे मार्गमें भारतके इतिहासमें सर्वोच्चस्थान रखनेवाला राणा प्रतापका प्यारा उदयपुर पड़ता था। जब महाराजकी सवारी वहाँ पहुँची तो राणाजीने आपसे आपके आतिथ्यकी प्रार्थनाकी। किसी दुष्टकी बुरी सिखावनीमें आकर राजाके कारबारियोंने पहिले आपका कैंप रनिवासके भीतर लगवा दिया पर जब राणा साहिबको पता चला तो आपने हाथीके हौदेमें श्रीचरणोंको राजमहलमें लाकर उतारा। वहाँ आपका पूरा आतिथ्य सत्कार किया। इस प्रकार रनिवासमें उतारनेका संमार्जन राणा साहिबने राजमहलमें उतारकर किया था॥ ९॥

पीत्वा वाक्य सुधां स्वकर्ण पुटकैः विद्वत्सुधांशुद्रवाम्।
हिन्दू भास्कर वंशजःस नृपतिः प्रीतिं परां लब्धवान्।
तेनायं द्विरदादिदान विधिना भूपेन सम्भावितः।
ज्ञानैश्वर्य्यबलैर्महान् हि महतां मानेन संयुज्यते॥ १०॥

विद्वानोंके भी त्रिविध तापोंको चाँदके समान शान्त करनेवाले श्री चरणोंके मुखारविन्दसे सत्यामृतरूपी मधुर वचनको अपने पुनीत कानोंसे पीकर हिन्दुओंके सूर्य्य महाराणा उदयपुरको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। राणाने आपके चरण कमलोंपर अनेकों घोड़ा हाथी और सोने चाँदीके दिव्य सामान भेट कर दिये। जिनकी कीर्ति आज भी अमर हो रही है।

यह एक माना हुआ सर्वतंत्र सिद्धान्त है कि जो लोग परमज्ञानी अलौकिक ऐश्वर्य और त्रिविध प्रकारके शास्त्र एवम् तपोबलसे संयुक्त महापुरुष होते हैं उनके मानको कोई नहीं रोक सकता। वह सर्वदा राजा महाराजा और माने हुए पुरुषोंसे मान ही पाते रहेंगे॥ १०॥

येन श्रीपति कीर्ति कानन नवच्छाया समुल्लासिता ।
विज्ञानाच्छ निशापतिर्मतिमतां हृद्व्योम्नि विद्योतितः ॥
आरोग्येष्ट शुभ प्रभातपवनो लोके समावर्तितः ।
स श्रीमान् जयति प्रसाद सुमुखोऽनन्तो वसन्तो यथा ॥ ११ ॥

भगवानने अपनेको सब ऋतुओंमें वसन्त बताया है । इसमें पुष्प पत्रादिकोंका नवीन उद्गम होता है । शरदी और गरमीका कोई खास असर नहीं रहता । प्रातःकालमें आरोग्यप्रद सुहावना वायु चलता है । स्वच्छाच्छ आकाशमें ओषधीशका शोभन उदय होता है । हमारे चरित्रनायक वसन्तसे किसी प्रकार भी कम नहीं हैं, वसन्त वनोंमें नवल लतिकाओंको खिलाता है तो इन्होंने भगवानके यशोरूपी बृहद्-वनमें नित नई स्तुतिरूपी नव लतिकाएँ खिलाई थीं । वसन्त तो आकाशके बीच तारकेश चाँदको चमकाता मात्र है पर इन्होंने तो बुद्धिमानोंके हृदयमें विज्ञानका ऐसा स्वच्छ चाँद विकसाया जिसका कभी अस्त ही न हो सके ।

प्रातःकालका वसन्तके समयका वायु तो शारीरिक रोगोंका ही नाश करता है पर इनके अलौकिक सौरभपूर्ण वायुने तो त्रिविध[१] रोगोंको खो दिया । इस प्रकार विचार करके देखा जाय तो हमारे महाराजा वसन्तसे भी अधिक होकर सबसे उत्तम उत्कर्षको पा रहे हैं ॥ ११ ॥

---

१ आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक ये तीन तरहके क्लेश होते हैं । शरीर मन और आत्माके दुखोंको आध्यात्मिक, दैवी पीड़ाको आधिदैविक तथा दूसरे प्राणियोंसे प्राप्त होनेवाले दुखोंको आधिभौतिक कहते हैं । साख्यशास्त्रमें ये ही तीनों त्रिताप करके प्रसिद्ध हैं ।

सौराष्ट्राञ्च शतं शतं मरुभुवश्चक्रेण येनाङ्किताः ।
शास्त्रार्थे कवयः कृताश्च कपयो वैशिष्ट्यवादोत्तरे ॥
रक्षार्थं यतिराजसिद्धवचसां बद्धा निबन्धास्तथा ।
अनन्तस्य प्रतिवादि भीकर मुनेः किं किं न लोकोत्तरम् ॥१२॥

जिस प्रकार वीर चक्रवर्ती अपने अप्रतिहत चक्रसे सबपर सिक्का जमा लेता है इसी तरह आपने सौराष्ट्र और मारवाड़को भ्रमणसे बारंबार कृतार्थ कर कर अपने दिव्य उपदेशसे सारे विश्वमें श्री वैष्णवताका सिक्का मनवा लिया था। श्री वैष्णव संप्रदायके वेदान्त सिद्धान्त विशिष्टाद्वैतके विषयोंके शास्त्रार्थोंमें तो जिन्होंने बड़े २ प्रति-वादी विद्वानों और कवियोंको कपि (वन्दर) बनाकर ही छोड़ा था। भगवान् रामानुजाचार्य्यके पवित्र वचनोंकी रक्षाके लिये बड़े २ सार गर्भित महानिबन्धोंकी रचना की। मैं प्रतिवादि भयङ्कर मठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीमद् अनन्ताचार्यजी सूरिकी कौनसी ऐसी बात बताऊँ जो दुनियाँसे निराली नहीं है ॥ १२ ॥

भाषन्ते स्म जनानवैदिकतया ये तप्तमुद्राधरान् ।
ये च श्रीपति सन्निधे रुपरताः त्यक्तोर्ध्वपुण्ड्रादराः ॥
ते सर्वे प्रतिवादि भीकरकरं दिष्ट्येन दुर्दृष्टयः ।
दृष्ट्वोद्यन्त मनन्त सूरि तपनं लीना उलूका इव ॥ १३ ॥

शास्त्रके रहस्यसे अनभिज्ञ लोग, तप्तमुद्राधारी श्री वैष्णवोंको अवै-दिक कहकर उनसे महाघृणा प्रकट किया करते थे, जिससे अनेकों श्री वैष्णव हुए मनुष्योंको भी ऊर्ध्वपुण्ड्र और तप्तमुद्राके धारणमें प्रेमादर नहीं रहा था। ईश्वर श्री वरदराज भगवानकी कृपासे श्री लक्ष्मणाचार्य्यका अवतार श्री चरणोंके रूपमें हुआ जिस प्रतिवादि भयंकर मार्तण्डको देखकर दोषदृष्टि पुरुष उल्लूकी तरह छिप जाते थे ॥ १३ ॥

तैलङ्गेश सरस्सदेश विकसत् सीतापतेर्वाटिका ।
यत्रास्ते भृगुवासरे जलधिना वीथी विहारोत्सवः ॥
स्वामी तत्र कदाप्यवेक्ष्य तुलसीं मूलात्समुन्मूलिताम् ।
व्याजहे निगमागमेषु तुलसीपत्रग्रहः स्मर्य्यते ॥ १४ ॥

तैलङ्ग देशके स्वामी (वेंकटेश) के सरके समीप एक सुहावनी सुन्दर रामवाटिका है । जहाँ शुक्रके दिन वेंकटेशका वीथी विहार नामक उत्सव मनाया जाता है । वहाँ किसी दिन स्वामी रामानुजाचार्य्यने अनन्दाल्वारसे तुलसीकी वाटिका लगानेके लिए कहा, क्योंकि यह दुष्प्राप्य हो रही थी, इस कारण उसी दिनसे निगम और आगमोंमें यह दिन तुलसी पत्र ग्रह नामसे याद किया जाता है ।१४।

अहल्याः काहल्यः कलिकलुष हालाहल हलाः
नभस्सानौ भानौ तपति तपतो दीपकशिखे ॥
नरःकोऽयं दोलागजतुरग कोलाहल धरो ।
ह्यनन्तार्य्यः स्वामी व्रजति बहुमाने रूपचितः ॥ १५ ॥

आसमानकी ऊँची शिखरपर सूर्य्य चढ़कर तप रहा है नीचे जिसके आगे दो बड़ी २ मसालें जलती चल रही हैं । जिनके गंभीर नादसे कलियुगके कालुष्यका विष दूर भग रहा है ऐसी बड़ी २ भारी काहली बजती चल रही हैं । इसके साथ अनेकों हाथी, घोड़ा, रथ, गाड़ी, पालकी और पिण्डसें हैं जिनका पूरा कुलाहल मच रहा है । देखो तो सही जिस आदमीके साथ इतना वैभव है वह कौन है ? देखो रे लोगो ! ये सब जगह सभी समाजोंके सब तरहके लोगोंसे बहुमान्य प्राप्त किये हुए प्रतिवादि भयङ्कर मठाधीश्वर 'जगद्गुरु' श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी सूरिकी सवारी मंगल हो रही है । १५ ।

अधीताः स्वाध्यायाः गुण गण विनीता निजतनुः ।
पुरस्कृत्योत्थानं प्रचुर धन मानादि विचितम् ॥
अनन्तेनोपायैर्मनुज समुदाये प्रकटितम् ।
लभन्ते सोत्साहाः सितिकनकवाहान्न कृपणाः ॥ १६ ॥

आपने सारे वेदशास्त्रोंको नियमपूर्वक पढ़ा था । आपमें अनेकों लोक कल्याणकारी दिव्य गुण थे जिनकी वजहसे वे और भी अत्यन्त विनीत हो गये थे । आपने सारे जन समुदायको यह सिद्ध करके दिखा दिया था कि—' यह उन्नतिका पथ कौनसा है जिसमें रात दिन उलीचने पर भी धन मान बढ़ता ही रहे कम न हो । आपसे लोगोंने यह सीख लिया था कि सद्व्यय करनेवाले उत्साही लोग बड़ी बड़ी जागीरें भारी भारी स्वर्ण चीजें तथा बेश कीमती घोड़े हाथी पा सकते हैं पर कृपण जन कभी ऐसी उन्नति नहीं पा सकता ॥ १६ ॥

प्लुतः प्रत्यूहाब्धिर्धनदजन लक्ष्मी रधि गता ।
अचिल्लङ्का दग्धा दशमुखजये येन यतितम् ॥
तमन्तानामन्तं प्रतिपद महान्तं सुमहताम् ।
अनन्तार्य्यं लोके किमुत हनुमन्तं न मनुताम् ॥ १७ ॥

ऐ मनुष्यो ! आप लोग श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजीको हनुमानजी ही क्यों नहीं मान लेते । इनको हनुमान मनवानेके लिये जो मेरे पास सामग्री है उसे मैं आपको बताये देता हूं । लङ्काको जाती वार मनोजय हनुमतने रास्तेके विघ्नोंको पैरोंसे कुचल दिया तो इनके रास्तेमें तो इनके तप तेजके आगे कोई विघ्न ही न आये । इस तरह दोनों ही विघ्नोंके सागरको तो तैरे ही हुए हैं । हनुमानजीने कुवेरके घरके लोगोंकी लक्ष्मी भगवत् सेवामें लगाई थी तो हमारे चरित्र नायकके

पास जितनी भी धनिक जनोंकी भेट आती थी उसका भगवत् और भागवतोंमें ही प्रयोग होता था।

हनुमानजीने सोनेकी लंकाको जला कर दश मुखोंवाले एक रावणकी विजयमें रामके साथ प्रयत्न किया था, हमारे चरित्र नायकने भी अज्ञानकी अनेकों लङ्काएँ जलाईं तथा अनेकों मुखोंवाले अनेकों वादियोंको एक साथ परास्त किया था ॥ १७ ॥

प्रपन्नानां त्राता कलिकलुषघाताहत तनुः
उपाधीनां दाता शिवविधि विधाता वरद राट्।
महान् मुद्राधारी श्रुतिपथ विहारी सुमनसाम्।
अनन्तो वः पापं हरतु परितापं शमयतु ॥ १८ ॥

उनकी शरणमें चाहे पापीसे पापी और पुण्यात्मासे पुण्यात्मा कोई भी जाय उसके गुण दोषोंपर दृष्टि न डालते हुए सहज दयादृष्टि करते थे। शरणागत जनोंकी बुरी वासनाओंके नष्ट करनेमें ही सदा दत्तचित्त रहा करते थे। महामुद्राके धारण करनेवाले थे जिनकी यशो राशिको सुननेके लिये सज्जन सदा लालायित रहा करते थे। ऐसे श्रीजगद्गुरु अनन्त महाराज मेरे परितापको शान्त करने की कृपा करें ॥ १८ ॥

कृशा ह्रस्वा यष्टि र्द्रविडवसुधा च प्रसवभूः।
सदाचारो भिन्नः श्रुतिगत विचारोऽप्यसदृशः।
तथाऽप्यार्यावर्ते गुरुपदमनन्तोऽनुभवति।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥ १९ ॥

भगवान् अनन्ताचार्य्यजी शरीरसे मोटे ताजे नहीं थे शरीर परम तला था और विशेष ऊँचा भी नहीं था। इनकी जन्मभूमि भी

द्रविडदेश था यहां इस देशमें पैदा भी नहीं हुए थे। इनके देशाचार और सदाचार भी फिर उसी देशके होने चाहियें। शास्त्रीय विचार भी इनके यहांके लोगोंसे भिन्न थे। फिर भी आर्य्यावर्त देशमें सभी धार्मिक पुरुषोंने उन्हें परमगुरुके रूपमें माना जिसका अनुभव उन्होंने अपने ही जीवनमें अनेकों वर्ष सानन्द किया। इससे यह बात सुतराम् सिद्ध होजाती है कि—'जो तेजस्वी अवतार पुरुष होते हैं उनकी सारी बातें उनके प्रभावमात्रसे ही संपन्न हो जाती हैं उन्हें किसी उपकरणकी आवश्यकता नहीं होती' ॥ १९ ॥

विविध विषय भाषा कोविदात् तार्क्ष्य दृष्टेः।
अपि पवन जवेनोपस्थितात् कार्य्यकाले।
श्रुतिपथ पथिकेषु ब्राह्मणा वः कुलेषु।
कृतिकुशल फलाढ्यःकोऽस्त्यनन्तात्परोऽन्यः ॥ २० ॥

रे भूदेवो! यह बताओ कि—'वेदके विशुद्ध मार्गपर चलनेवाले अपने कुलोंमें क्रियादक्ष सर्व फल संपन्न ऐसा पुरुष कौन है जो भगवान गरुडकी सर्वज्ञताके समान सारे देशों और सारे शास्त्रोंके सारे विषयोंकी भाषाका पण्डित हो। काम पड़नेपर हनुमानकी तरह वायुके वेगसे आ उपस्थित हो।' मेरा तो ऐसा ध्यान है कि—'सिवा हमारे श्री चरणोंके ऐसा दूसरा कोई भी पुरुष नहीं है जिसमें कि पूर्वोक्त गुण मिले हों ये ही एक ऐसे थे जिनमें ये सब बातें थी' ॥ २० ॥

स्वचरित फल भाजां प्राणिनामग्रणीषु।
यदभिमुखमनन्ताचार्य्य दृग् पात आसीत् ॥
धवल तिलक माला शङ्खचक्राङ्किताःस्ते।
घट सकट कटाहा वैकुण्ठं रटन्ति ॥ २१ ॥

जिन प्राणियोंके उत्तम कर्मोंके फलका उदय हो गया है उन श्रेष्ठ प्राणियोंमें भी जो सर्वोत्तम प्राणी आचार्य्य चरणोके सामने आये आपने जिनके ऊपर एक वार भी दयादृष्टि करदी उन्होंने उसी समय सफ़ेद गोपीचन्दन और श्रीचूर्णका ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाकर शंखचक्र ले लिये वे पुरुष उसी दिनसे संसारके झूठे माया मोहोंको छोड़कर अपर्शके घट फटिया और भगवदाराधनका सामान लेकर वेंकटेश भगवानमें ही लौ लगाये बैठे हैं ॥ २१ ॥

अनवधिधन हेतोर्वर्ज्यदेशान् प्रपन्नान् ।
कुश गुरु कुल वासान् स्वार्थदासानुदासान् ॥
यदि भरत धरित्र्यां नागतः स्यादनन्तो ।
मकर मुख गतान् क स्तारयेन्मारवीयान् ॥ २२ ॥

यदि श्री आचार्य्य चरण भारत भूमिमें न अवतीर्ण हुए होते तो उन मारवाड़ियोंको कौन पुरुष संसारके घोर ग्राहसे बचाता जो कि—'अनन्तधन राशिके लोभसे उन देशोंमें भी जा बसे हैं जिनमें घुसनेका भी प्रायश्चित्त लिखा हुआ है। जिन्होंने कभी आचार्य्य कुलमें रहकर उपवीती होकर एक भी धर्मग्रन्थ नहीं पढ़ा जो भगवानके दासानुदासके स्थानमें स्वार्थ देवके दासानुदास थे।' वे सब आज श्रीचरणोंकी कृपासे पूरे मुमुक्षु बने हुए हैं ॥ २२ ॥

हरिसदनमनन्तश्चारु मुम्बानगर्य्याम् ।
प्रति घटयति यावच्चेतनानुद्दिधीर्षुः ॥
अखिल भुवन भर्त्रा तावदामन्त्रितोऽसौ ।
नहि कृतमकृतं वा प्रेक्षते धर्मराजः ॥ २३ ॥

महाराजकी इच्छा थी कि—'बम्बईमें एक उत्तम दिव्यदेश बना-

कर चेतनोंका उद्धार करूँ ' पर जबतक वह सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं बन पाया कि—' परमव्योममें परमेशको उनकी आवश्यकता पड़ी, तीनों लोकोंके स्वामीने आपको अपने पास बुला लिया। धर्मराजको तो भगवानकी आज्ञा पालन करने मात्रकी आवश्यकता है दूसरी बातकी नहीं। यह किसीको ले जाने और लानेमें यह नहीं देखता कि—'यह जिस कामके लिये भेजा गया है उसे पूरा कर चुका या नहीं।' यदि आपका दिव्य मंगल विग्रह यहाँ थोड़ा और रह गया होता तो न जाने उक्त देवस्थान कितनी बड़ी उन्नति कर गया होता ॥२३॥

को हस्तिवाजि सकटैः शिविकाधिरूढः।
काञ्ची पुरान्मरुधरां प्रतियातुवीरः॥
कस्तर्क कर्कश परांश्च समाह्वयेत।
अनन्तार्य्यवर्य्य गुरुता यदि नोत्थिता स्यात् ॥२४॥

यदि श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी महाराजसूरिमें ईश्वरीय प्रभाव न होता तो यह किसकी शक्ति थी कि—' हजारों कोश दूरपर विराजमान विष्णुकाचीसे खुश्कीके रासते गाड़ी, बैल, हाथी, घोड़ा आदिके साथ पिन्डसमें चल कर मारवाड़ पहुँच, श्री वैष्णवोंको शुष्क तर्कोंसे सतानेवाले पाण्डित्याभिमानी लोगोंको नियमित शास्त्रार्थके लिये मैदानमें बुलाता। सिवा इनके यह सामर्थ्य दूसरेमें नहीं है ॥ २४ ॥

काशीपुरी परिसरेषु विशिष्टवादान्।
यस्याऽधुनाऽपि कवयो नहि विस्मरन्ति॥
तस्मा अनन्त पुरुषाय कुशाग्रबुद्धया।
सम्पश्यतेऽञ्जलिरयं प्रथमो ममास्तु ॥ २५ ॥

काशीपुरीके शास्त्रार्थमें आपके विशिष्टाद्वैतके सिद्धान्तोंके प्रतिपादन

और समर्थन करनेकी परिष्कृत शैलीके वैदुष्यको, आज भी सभी सम्प्रदायोंके वेदान्तके विद्वान् नहीं भूले हैं न कभी भूलेंगे। संसारके धार्मिक इतिहासमें वह कृत्य आपका सदा अमर रहेगा।

उन कुशाकी नोंककी तरह तेजबुद्धिवाले श्री अनन्त पुरुषके लिये यह मेरी प्रथम श्रद्धांजलि सप्रेम पहुँचे जिसके कि उपस्थित किये हुए पक्ष प्रतिपक्षोंके लिये वज्रके पक्ष थे ॥ २५ ॥

मुम्बापुरे महति येन महान् व्यधायि ।
श्रीवेंकटाचलपतेर्नवदिव्यदेशः ॥
सिन्धोः पयोभिरभिषिच्य सहौषधीभिः ।
सम्पादिता गरुडवाहनपादपूजा ॥ २६ ॥

जिन्होंने भारतके सबसे बड़े सुन्दर नगर बम्बईमें वेंकटेश भगवानका बड़ा भारी नवीन दिव्यदेश बनाया। वहां सर्वौषधियोंके साथ समुद्रके पानीसे सर्वेशका अभिषेक करके गरुडवाहन श्रीवेंकटेश भगवानके चरण कमलोंकी पुनीत पूजा संपन्न की ॥ २६ ॥

इन्दोर सुन्दरपदस्थ महेश्वरीय—
श्रीराम मन्दिर मुकुन्द पदारविन्दे ॥
कम्बोरधस्तिलमितं व्रणमास शान्त्यै ।
पृष्टो न पापमिति विज्ञपयां चकार ॥ २७ ॥

इन्दोर शहरके सुन्दर पुरीमें इन्दोरके माहेश्वरी समाजका एक राममंदिर है। वहांके भगवानके अर्चा विग्रहमें एक कम्बु (कंठ) के नीचे तिलके बराबर व्रण हो गया था आप इसकी शान्तिके लिये इन्दोर गये थे उस समय लोगोंने पूछा तो आपने यही उत्तर दिया कि—' हमारे ही पापोंसे भगवानके यहां यह व्रण हो गया है। ' सर्वेशके सामने इतना आत्मनिवेदन दूसरेका नहीं हो सकता ॥ २७ ॥

स्पृष्ट्वा पुराणमपुराणमथोनविंशं ।
नाथाभिधा यतिपदाः श्रुतिसम्मतत्वे ॥
यस्याशयं सपदि योधपुरे ग्रहीतुम् ।
प्राप्ता न चापुरनयात् तमनन्तमीडे ॥ २८ ॥

आप जोधपुर गये तो वहाके राज गुरुके तरीकेसे माने हुए नाथ लोग, अपने बनाये हुए उन्नीसवे पुराणको आदि अनन्त महाराजके पास शास्त्रसम्मत कहलवानेके लिये ले गये। आपने इस बातका विचार नहीं किया कि—'ये लोग राजगुरु होनेके कारण अपने हाथोंमें राजकी सत्ता रखते हैं। मुझे नुकसान पहुँचायेंगे।' जो पुराण न होकर आधुनिक कृत्रिम ग्रन्थ था उन्होंने उसके लिये यह कह दिया कि—'यह पुराण नहीं है।' इस बातके कहनेके लिये भारी हानि उठाई तो भी सत्य कथनसे न चूके। मैं उन अनन्त महाराजकी भी स्तुति करता हू ॥ २८ ॥

यन्मञ्जुभाषणवती नयनेऽञ्जयन्ती ।
चक्षुष्मतांऽजनवटीव विभाति दिक्षु ॥
सर्वस्वपात्रपदिनास्ति मनस्तमिस्राम् ।
काञ्चीपुरादियमुदञ्चति कोनुभानुः ॥ २९ ॥

अपने 'मंजुभाषिणी' नामक एक साप्ताहिक संस्कृत पत्रिकाको काची सुदर्शन प्रेससे जन्म दिया था। जो चारों ओर पढ़े लिखे लोगोंमें अंजनकी तरह फैलती हुई ज्ञानचक्षुओंके बढानेके लिये अंजनका काम करती थी। एक "वैदिक सर्वस्व" नामक मासिक

नोट—यह घटना आज से दो सौ वर्ष पूर्वकी है। चरित्र नायकके प्रपितामहसे सम्बन्ध रखती है।

पत्र भी उक्त प्रेससे निकला करता था जिसका काम मनकी अँधियारी रातको दूर करनेका था ॥ २९ ॥

अध्याप्यते नृपति पाठ्यगृहेषु यद्वत् ।
शारीरकं सुकविशङ्कर सम्प्रणीतम् ॥
रामानुजीयमपि तद्वदनन्तपादैः ।
अध्याप्यतां किमिति नेति कृतः प्रयत्नः ॥ ३० ॥

आपने ही श्री भाष्यको यूनिवरिसीटीके पाठ्य क्रममें स्थान दिलवाया था कि—' जब श्रीशङ्कराचार्यका बनाया हुआ शाकर भाष्य ले लिया गया है तो हमारे श्रीभाष्यको भी परीक्षाके सरकारी कोर्समें स्थान मिलना चाहिये। आपकेही प्रयत्नका यह फल है जो कि—' एम्. ए. बि. ए. और आचार्य्यके छात्र श्रीभाष्यको पढकर श्रद्धाके साथ नत मस्तक होकर भाष्यकार स्वामीका स्मरण करते हैं ॥ ३० ॥

ब्रह्मोत्सवादि शरणागति पोपकारि ।
कर्मान्तरा यदपि नास्य परः सवोऽस्ति ॥
आकारितस्तदपि छान्दसिकैः स्वयंभूः ।
स्वाज्ञाप्रयुक्तमिति याति करोति वक्ति ॥ ३१ ॥

उत्सवोंके विषयमें महाराजके ये विचार थे कि—' ब्रह्मोत्सव आदि सारे उत्सव शरणागतिको ही पुष्ट करते हैं और ये भी एक प्रकारके कर्म ही हैं कोई भी उत्सव ऐसा नहीं जिसे कर्म न कहा जा सके। पर भगवान ऐसे दयालु हैं कि—' पाच रात्र शास्त्रके सच्चे रहस्यके जाननेवाले वेदवेत्ता जन जब चाहते हैं तो भगवान यह समझकर कि—' ये लोग मेरी ही आज्ञाका पालन कर रहे हैं यह मैंनेही कहा है जिसे ये मेरे कथनके कर करा रहे हैं ' आप जाते हैं करते हैं और कहते हैं ॥ ३१ ॥

सौवर्ण वर्ण सिकता गिरि भू विहारी ।
उष्णीषधारि वर वाणिज कर्मचारी ॥
आशाचरो मरुविशां निकरः करस्थ—
श्रीपुष्प आश्रयति य स भवाननन्तः ॥ ३२ ॥

सोनेकेसे रंगकी रेतीके *पहाड़ोंवाली भूमिपर सायंकालके समय सानन्द विचारनेवाले शिरपर पीली पगड़ी बांधनेवाले वाणिज्य व्यवसायमें परम निपुण मारवाड़ियोंकी टोलियोंकी टोलियाँ, जिस महापुरुषकी श्रद्धापर मंत्रमुग्धसी होकर हाथमें बडी २ भेटें लेकर आ उपस्थित होती थीं यह सब श्री चरणोंका ही वैभव था ॥ ३२ ॥

यन्मञ्जुगुणसंघात—
मञ्जूषा मञ्जूभाषिणी ।
भाति वैष्णवसर्वस्वं,
सर्वस्वं पारदृश्वनाम् ॥ ३३ ॥

मंजुभाषिणी नामक संस्कृत पत्रिकाके लिये विशेष न कहकर इतना अवश्य कह देना चाहते हैं कि—' उसका संपादन स्वयम् महाराज करते थे जिससे उसमें उनका इतना वैदुष्य भरा रहता था कि—' उसे महाराजके भव्य गुणोंकी मनोहर पिटारी ही कह दें तो कोई अत्युक्ति न होगी ।' आपका निकाला हुआ मासिक पत्र

टिप्पणीः—* मारवाड़में प्रायः पीली रेतीके बड़े २ टीले बहुतायतसे मिलते हैं जिन्हें छोटे २ पहाड़ भी कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ये दिनमें सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे जितने संतप्त हो जाते हैं रातको चन्द्रमाकी शीतल किरणोंसे उतने ही शीतल और सुहावने भी बन जाते हैं । उस समय वहांके निवासी चांदनीका आनन्द लेनेके लिये इन टीबोंपर जा बैठते हैं कविने इतने बड़े इतिवृत्तको इन छोटेसे अक्षरोंमें रख दिया है ।

'वैदिक सर्वस्व' भी सारपदार्थके संग्रही श्रीवैष्णवोंके लिये सर्वस्वसे भी अधिक था इस कारण इसे वैष्णव सर्वस्व कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। ॥ ३३ ॥

ऊर्द्धेर्व्यावर वासिभिः कलहगां जित्वा नवेभ्यो महीम्।
आर्य्योभ्योऽथ यदुक्तिभिर्विरचितः श्रीवेंकटेशालयः ॥
यत्र श्रीरमणस्य शास्त्रविधिना नित्यं समाराधनम्।
कुर्वन्तः क्षण माप्नुवन्ति मुदिताः पौरा मुमुक्षापथे ॥ ३४ ॥

ब्यावरके परम संपन्न धनाढ्य व्यापारियोंकी कोई पुरानी कदीमी जगह पड़ी हुई थी उसपर दूसरे किन्ही नवीन व्यक्तियोंने अधिकार जमा लिया था। उसपर मुकदमा चला जिसमें उसके असली धनी उसे जीत गये। इन लोगोंने महाराजके उपदेशसे पूर्ण विधिके साथ एक वेंकटेश भगवानका यहां दिव्यदेश बनवा दिया। जिसमें प्रतिदिन शास्त्रकी विधिके अनुसार पूजा तथा रोज समाराधन गोष्ठी प्रसाद होता है। नगरके रहनेवाले भक्तजन भी प्रतिदिन भगवानका दर्शन करके मोक्षपथपर सानन्द अगाड़ी बढते चले जाते हैं ॥ ३४ ॥

नागोर मोलासर मूडवासु।
फतेपुर श्रीकर रोलमध्ये ॥
कुचामणौ योधपुरे भिवान्याम्।
ध्वजस्तवानन्त ! जयत्यजस्रम् ॥ ३५ ॥

हे श्री लक्ष्मणार्य्यके अपरावतार पुरुष श्रीमद् अनन्ताचार्य्य ! आपकी विजयवैजयन्ती, नागोर, मोलासर, मूंडवा, फतेपुर, सीकर, रोल, कुचामणि, जोधपुर और भिवानीमें निराबाध फहरा रही है। आपके उपदेशसे इन सब शहरोंमें भगवानके दिव्य देश बने हैं उनमें

अनेकों तो ऐसे हैं जिनकी अर्थ चिन्ता भी आपको करनी पड़ी थी। ये अब भी उत्तम प्रबन्धके साथ सानन्द चल रहे हैं ॥ ३५ ॥

स्वसत्तां कलकत्तायाम्,
, ये सनातन संसदि।
द्योकयामासतुर्मान्ये,
तेऽनन्ताचार्य्य ! पादुके ॥ ३६ ॥

।। हे यति राजाधिराज ! आपकी परम माननीय पुनीत चरण पादुकाओंने कलकत्ताकी सनातन धर्मसभामें अपनी सत्ताको चरितार्थ करके दिखा दिया था। आपने कलकत्ताके सर्वमान्य महाविद्वानोंके आगे ऐसे प्रकाण्ड पाण्डित्यका परिचय दिया था कि उन लोगोंने "वेदान्त वारानिधि" आदि बड़ी २ उपाधियाँ देकर अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी ॥ ३६ ॥

यस्यामोघमसादस्य,
निरुपाधेरुपाधयः।
मण्डयन्ति मपन्नानाम्,
नामानि च मनांसि च ॥ ३७ ॥

उनके प्रसन्न होनेकी देर थी वे जिसपर प्रसन्न हुए उसका सर्वदा कल्याण हुआ है उनकी कृपा ऐसी नहीं थी कि 'आज हो और कल न रहे' ये जिसपर प्रसन्न हुए सदा उसपर प्रसन्न ही रहे। उनके पास कोई उपाधि नहीं थी वे सदा द्वन्दातीत थे पर जो उनकी शरणमें आये जिसे जिस सम्मानके योग्य देखा वही उपाधि देदी जिससे उसका नाम विभूषित तथा मन सदा, प्रफुल्लित बना रहता है ॥ ३७ ॥

कं कं कं कं न कं कं कम् ।
कौ कौ कौ कौ न कौ च कौ ॥
कान् कान् कॉस्कान्न कान्कॉस्कान् ।
चक्रे काञ्ची मठेश्वरः ॥ ३८ ॥

श्री कांची प्रतिवादि भयंकर मठाधीश्वर जगद्‌गुरु श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी महाराजके विषयमें अधिक क्या कहें केवल इतना ही कहे देते हैं कि—' उनसे कोई भी ऐसा काम करने को वाकी नहीं रहा जिस उत्तम काममें मानव जीवनका पवित्र ध्येय रहता हो और उन्होंने न किया हो । ' मानवजीवनके करनेके सारे पवित्र कामोंको उन्होंने किया । जिन कामोंको अवतार पुरुष किया करते हैं वे भी उन्होंने किये । विशेष क्या कहूँ, भगवान रामानुजार्य्यने अपने करनेके कामोंको इसी रूपसे पूर्ण किया है ॥ ३८ ॥

अथैकदा वैष्णव सङ्ग्रहेच्छुः ।
बन्धुष्वभिव्यज्य मनोऽभिसन्धिम् ।
प्रयागमायाद् वरमाघमासे ।
सिद्धान्तरक्षार्थमनन्तसूरिः ॥ ३९ ॥

एक बार आपने विचार किया—' श्री वैष्णव समुदायको एक सूत्रमें बाँध दिया जाय । ' इसके लिये वैष्णव संमेलनको जन्म दिया। इसका प्रथम अधिवेशन तीर्थराज प्रयोगमें रखा उसमें आपको ही सर्व संमतिसे अध्यक्ष चुना गया । आप अपने मनोगत भावोंको कहने तथा वैष्णव सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिये माघमासमें श्री तीर्थराज प्रयाग आ अस्थित हुए । यह अधिवेशन इतने बड़े वैमाने और इस सज धजके साथ हुआ था कि—' जिसका उल्लेख भी वैष्णव सम्प्रदायके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा ' ॥ ३९ ॥

तटे त्रिवेण्याः समुपस्थितेषु ।
नाना मतोत्थापक वैदिकेषु ॥
स्वसंप्रदायोचित वेशभूषा ।
भाषावभासाभिनिवेशवत्सु ॥ ४० ॥

क्या ही अच्छा समय था पतितपावनी गंगा कृष्णकी प्यारी यमुना और दिव्य गन्धर्वोंकी स्नानभूमि सरस्वती इन तीनों पवित्र नदियोंकी संगम भूमि त्रिवेणीके किनारे, अपनी २ संप्रदायोंकी सनातनी पद्धतिके अनुसार वेशभूषासे सजे हुए विभिन्न भाषाभाषी भिन्न भिन्न वैदिक वैष्णव संप्रदायोंके विशिष्ट विद्वान इस संमेलनमें आये थे ॥ ४० ॥

उच्छ्रापयन् यामुन वैजयन्तीम्
यत्राचकाशत् प्रतिवादिसिंहः

वहां आप श्री यामुनाचार्य्यजी महाराज की विजयवैजयन्ती उड़ाते हुए परम शोभाको प्राप्त हुए । ऐसा सम्मान आज तक किसीको भी इन दिनोंमें नहीं मिला ।

॥ शास्त्रार्थः ॥

काशीनिवासी स्वगुणैः समग्रः ।
तत्रागतः कश्चन भट्टपादः ॥ ४१ ॥

ऐसे ही प्रसन्नताके समयमें काशीके रहनेवाले परम गुणी एक भट्ट आ उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥

कृतश्रमो व्याकरणादिकेषु,
वेदान्त सिद्धान्त नितान्त दान्तः ।
अद्वैतवादैः स विशिष्टवादान् ।
निराचिकीर्षुर्वचनं बभाषे ॥ ४२ ॥

भट्टजीने व्याकरण, साहित्य, न्याय और वेदान्तमें पर्य्याप्त परिश्रम

कर रखा था। ये वेदान्तके विश्वविदित सिद्धान्तोंके विषयमें परम प्रवीण थे। इनका यह विचार था कि–'अद्वैतके सिद्धान्तोंसे इनके आगे विशिष्टाद्वैतका खूब खण्डन किया जाय।' इस कारण ये श्रीचरणोंके आगे कहने लगे ॥ ४२ ॥

आसीदग्रे सदिति न न सच्चैकमेवाद्वितीयम्।
नासीत्तस्मिन्गुणकृत सजातीय वैजात्य भेदः ॥
एवं वेदे नदति वृषभे कण्ठघोषेण नित्ये—
ष्वाम्नायेषु प्रतिवदत वः क्वास्ति वैशिष्ट्यवादः ॥ ४३ ॥

भट्टपाद—बोले कि–'महाराज! छा. उ. में लिखा है कि–'हे सोम्य! इस सृष्टिकी उत्पत्तिके पहिले यह सब अद्वितीय एकही सत् था। सत्‌के सिवा कुछ भी नहीं था।' जिस प्रकार कि–'प्रत्येक वस्तुके स्वगत, सजातीय और विजातीय ये तीन भेद, गुण क्रिया आदिके कारण हुआ करते हैं उस तरह सत्‌में स्वगत, सजातीय और विजातीय ये तीनों भेद नहीं थे।' इस तरह सकल कामनाओंका देनेवाला वेद अपनी कंठ ध्वनिसे सदा कहता चला आरहा है और जब वेद ही ऐसा कर रहा है तो बताइये कि–'आपका विशिष्टाद्वैतवाद कहा है।' अपने अन्दर अपनेही अवयवोंमें जो पृथक् भाव है जैसे अपनेही शरीरमें हाथ अलग और पैर अलग पर इन सबके संयोगसे शरीर है यहां शरीरके अवयवों में जो परस्पर जुदापन हैं वह 'स्वगत' भेद है। एक आमके वृक्षमें जो 'दुसरे आमके वृक्षमें भेद है, उसे 'सजातीय' भेद कहते हैं क्यों कि–वे दोनों पेढ एक आम जातिके ही हैं। आमके पेढमें जो 'छोंकराके पेढसे जुदा पन है इसे विजातीय भेद' कहते हैं क्यों कि उक्त दोनों पेढ एक

जातिके नहीं हैं। इसी तरह निरवयव सत्में स्वगत भेद तो हो नहीं सकता क्योंकि—उस भेदका स्थान सावयव वस्तु है। दूसरा कोई सत् है नहीं जिससे इस सत्में सजातीय भेद हो। सद्से भिन्न असत् तो कोई वस्तु ही नहीं जिसके भेदकी कल्पना की जा सके। यह हमने अद्वैत सिद्धान्तके अनुसार मूलमें आये हुए तीनों भेद दिखा दिये हैं ॥ ४२ ॥

स प्रत्युक्तश्चिदचिद् विशिष्टो नः स सच्छब्द एव
इष्टापत्तौ भवति भवतो ब्रह्मकर्तृत्वहीनम् ।
इच्छा यत्नौ यदि न भवतो ब्रह्म तत्प्रस्तराभम्,
कर्मारम्भः कथमिह भवेद् ब्रूहि तस्मान्निरीहाद् ॥ ४४ ॥

विशिष्टाद्वैती—आपने उत्तर दिया कि-'जिस सत्का आप वर्णन कर रहे हैं वही यहांपर चिद् (चेतन) और (माया) इन दोनोंसे युक्त है।

आपने जो भेदका निषेध किया है कि—ब्रह्ममें भेद नहीं, तो यह तो हमको भी इष्ट ही है।

पर ए अद्वैतिन्! यह अच्छी तरह समझले कि—तेरा ब्रह्म कर्तापनसे रहित है। क्योंकि—ब्रह्ममें इच्छा और यत्न शक्ति न होगी तो उसमें और पत्थरमें क्या फर्क है। फिर बता कि-' उस निरीहसे क्रियाका आरम्भ कैसे होगा।' ॥ ४४ ॥

तस्मात्तत्त्वत्रयमपि सदित्युच्यते न त्रयाणाम् ।
दृष्टोऽभावः क्वचिदपि सतां ब्रह्म तेषां प्रधानम् ॥
राजा यातीति भवति यथा सानुगेऽपि प्रयोगः ।
तत्प्राधान्यात्प्रकृतवचनेऽप्येकशब्दः प्रयुक्तः ॥ ४५ ॥

इस कारण ए अद्वैतिन् ! जीव ब्रह्म और प्रकृति ये तीनों पदार्थ छान्दोग्यकी श्रुतिमें ' सत् ' शब्दसे कहे गये हैं। ये तीनों ही तत्त्व सत् हैं इनका कभी अभाव नहीं होता । इनमें ब्रह्म मुख्य है।

जब राजा अपने दीवान मंत्री सेनापती आदिके साथ भी होता है तो भी लोग उसकी प्रधानताको लेकर यही कहते हैं कि-' राजा आ रहा है ।' इसी तरह उन तीनों तत्त्वोंमें ब्रह्म प्रधान है । इस कारण उक्त श्रुतिने भी एक शब्दका प्रयोग कर दिया है ॥ ४५ ॥

मास्म ब्रूया न भवति मम ब्रह्म कर्तृत्वहीनम् ।
यस्मात्पाङ्गीकरणविधिना कर्तृतां साधयामि ॥
एकम्ब्रह्माव्ययमविकृतं सच्चिदानन्दरूपम् ।
मायायोगः सृजति जगतीं तिष्ठतां तन्निरीहम् ॥ ४६ ॥

अद्वैती—हे महाराज ! आप मुझे ऐसा न कहें कि—' तेरा ब्रह्म कर्तापनसे हीन है क्यों कि—मैं आपके सामने अपने ब्रह्मका कर्तापन मायाके अंगीकारसे अभी सिद्ध किये देता हूं । पहिले सच्चिदानंदरूप अव्यय ' अविनाशी ' अविकृत (अविकारी एक ही ब्रह्म था उसने स्वयम् निरीह रहते हुए भी मायाके योगसे संसारको रच दिया ॥४६॥

यो मायाङ्गीकरणविधिना कर्तृतां साधयेत ।
वक्तव्योऽसौ तव न घटते ब्रह्मणः कारकत्वम् ॥
इच्छाहीनं कृतिविरहितं ब्रह्म ते निर्विशेषम् ।
मिथ्यामाया कथमथ भवेत् तादृशोरङ्गसङ्गः ॥ ४७ ॥

विशिष्टाद्वैती—अद्वैतिन् ! जो तू मायाको मानकर ब्रह्मके कर्तापनको सिद्ध कर रहा है इसपर मैं तुझसे यह कहता हूँ कि—' तो भी तेरे ब्रह्मको कर्तापन सिद्ध नहीं हो सकता । ' देख ! तेरा ब्रह्म

'एक तो निर्विशेष है दूसरे इच्छा शक्तिसे रहित है तीसरे उसमें प्रयत्न और कृति भी नहीं हैं। तब वह फिर कर्ता बनकर कैसे कृति संपादन कर सकता है क्यों कि—इच्छा और प्रयत्नके विना कोई क्रिया नहीं होती विना क्रियाके कर्ता कैसा? अब रही आपकी मायाकी बात, सो यह भी तो झूठी है कोई वस्तु नहीं है। फिर यह बताओ कि—अवस्तु न कुछ चीज मायाका इच्छा प्रयत्नादिसे हीन निरीह ब्रह्मके साथ अंग संग (संयोग) कैसे हो सकेगा मेरा तो ध्यान है कि—कदापि नहीं हो सकता ॥ ४७ ॥

यावत्साङ्गीकरणमभवत्तावदासीत्क माया ।
ब्रह्मण्यासीद्यदि तव तदा ब्रह्म मायाविशिष्टम् ॥
वैशिष्ट्यं चेद् भवति भवति त्वत्प्रतिज्ञा प्रहाणिः ।
इत्यद्वैती क्वचन सदसि द्वैतिना द्राग् गृहीतः ॥ ४८ ॥

इसके साथ भट्टजी यह भी बताइये कि—' जब तक आपके ब्रह्मने मायाका अंगीकार नहीं किया था उसने समयतक आपकी माया कहा रही आई थी। यदि कहो कि—ब्रह्ममें थी तो आपके यहाँ भी ब्रह्म माया विशिष्ट हो गया। यदि कहा हुआ ब्रह्म माया विशिष्ट हो गया तो समझ लो कि—आपकी प्रतिज्ञाकी हानि हो जायगी क्योंकि आप विशिष्टाद्वैत मानते नहीं हो। इस प्रकार हीं सभाओंमें अद्वैतियोंको निग्रहस्थान (पराजयकी जगह) में ले लिया जाता है। आपने भी भट्टपादको इसी निग्रहस्थानमें ले लिया। न्याय शास्त्रमें हारकी जगहको निग्रहस्थान कहते हैं ' ॥ ४८ ॥

माया भिन्नं वद तव तदा ब्रह्म मायात्मकं वा ।
भिन्नं तच्चेत् तदवधितयाऽनन्तता तस्य न स्यात् ॥

अङ्गीकारो भवति विफलो ब्रह्म मायात्मकं चेत् ।
एकारज्जु र्द्वयमुभयतः पाशमेषा बिभर्ति ॥ ४९ ॥

ए भट्टपाद ! यह तो बता कि—' तेरा ब्रह्म मायात्मक है या मायासे भिन्न है ।' यदि उसे मायासे भिन्न कहेंगे तो उसकी हद मायासे उरे २ में हो गई अतः वह अनन्त न हो सकेगा क्यों कि—दिशा देश और काल जिस पदार्थको विभक्त न कर सकें उसे अनन्त कहा करते हैं यहाँ तो प्रदेशोंकी सीमाएँ तेरे ब्रह्म और मायाको भिन्न करती हैं इस कारण तेरा ब्रह्म अनन्त नहीं कहला सकता ॥ ४९ ॥

अस्माकं सच्चिदचिद्विशिष्टं न तत् नोक्त दोषाः ।
नापिक्लेशः क्षितिधरयते लक्षणायाश्रयोत्थः ॥
द्वावप्येतौ प्रकृतिपुरुषौ ब्रह्मणो देहभूतौ ।
बीजाद् वृक्षः परिणत इव ब्रह्म विश्वयतिष्ठा ॥ ५० ॥

हमने जो दोष आपके मतमें दिखाये हैं वे सब हमारे विशिष्टा द्वैतके पास होकर भी नहीं गुजर सकते । क्योंकि—हमारे यहाँ चित् (चेतन) और अचित् (माया) इन दोनोंसे युक्त ब्रह्म एक है । यह मत सारे प्रमाणोंसे संपन्न हैं इस कारण इसमें कोई दोष और कोई क्लेश नहीं है । ये दोनों प्रकृति और पुरुष ब्रह्मके देह तथा ब्रह्म इनका देही है । जिस प्रकार बीजसे वृक्ष हो जाता है उसी तरह ब्रह्मका देह ही विश्वके रूपमें परिणत हो गया है ॥ ५० ॥

एवाकारो द्वयति विभुं यः सदेवेतिवाक्ये ।
अद्वैताख्या श्रुतिरपि सवी न द्वितीयं बिभर्ति ॥
अध्यारोपाज्जगदिदमहो रज्जुसर्पो यथास्ते ।
सच्चिद् ब्रह्मण्ययमधिगतोऽ ज्ञानसृष्टः प्रपंचः ॥ ५१ ॥

अद्वैती—भट्टपाद यह सुनकर कहने लगा कि—'सदेव' इस वाक्यमें जो एक शब्द आया हुआ है वह सदके एकीभावका अवधारण करता है। यह जो 'अद्वितीय' पद पड़ा हुआ है यह दूसरी वस्तुका तो सर्वथा ही प्रतिबंध करता है। जिस प्रकार रज्जुमें सर्पका अध्यारोप कर लिया जाता है उसी तरह सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अविद्याका निर्माण किया हुआ यह सारा अध्यारोपित प्रपंच है ऐसा वेदने निश्चय किया है ॥ ५१ ॥

मायायां ब्रह्मणो हि प्रभवति सुतरां तावदाभासयोगः।
संकल्पः सृष्टिमूलस्तदनुपरगतेस्तेन विश्वप्ररोहः॥
इत्यद्वैती ब्रुवाणः प्रतिवचनपदे बोधितश्चिन्मयस्य।
'अ' रूपस्याभासयोगो जगति जनतया न श्रुतो नापि दृष्टः॥५२॥

मायामें ब्रह्मका आभास (पर छाँई) पडती है उससे मैं एक अनेक हो जाऊँ यह इच्छा उत्पन्न हो जाती है इसीसे सारा ससार उत्पन्न हो जाता है।

महाराज—यह सुनकर बोले कि—'जो केवल ज्ञानमय अरूपी पदार्थ है उसकी परछाई नहीं हो सकती फिर मायामें किस तरह पड़ेगी। यही एक कारण है कि ऐसा हमने न तो किसी वेद में ही देखा है और न सुना ही है ॥ ५२ ॥

नन्वाकाशे स्वरूपस्तदपि स सुतरां भासते दर्पणादौ।
तत्किं दृष्टो न लोकैरिति वदसि मुधा दृश्यतां श्रूयतां वा॥
मा मंसीस्त्वंतमेवं श्रुतिमनुसरता वाचि तारापथस्य।
जन्यत्वाद् रूपवत्त्वं कथयति तमतः पश्य नीलं नभोऽस्ति॥५३॥

अद्वैती—कहने लगा कि—हे स्वामिवर्य्य ! आपका यह कहना कि—'जिनके रूप नहीं उनकी परछाई भी नहीं होती।' यह ठीक नहीं है क्योंकि—आकाशके भी रूप नहीं है फिर भी उसकी प्रतीति पानी और दर्पणमें दीखती है। आपको संदेह हो तो आप देख लें और सुन लें। स्वामीजी बोले कि—'आप तो अपने को श्रुतिके अनुसार चलते बता रहे हैं फिर यह कैसे मान रहे हैं कि—आकाशकी परछाई दर्पणमें दीखती है। यदि ऐसा ही आपके यहां चलता है तो यह अनुमानाभास भी आपके यहां सत्य ठहरेगा, कि—'व्योम रूपवत् जन्यत्वात्—आकाश रूपवाला है जन्य होनेसे क्योंकि जो जो पैदा होनेवाले पदार्थ होते हैं वे सब रूपवाले ही होते हैं जैसे कि पैदा होनेवाला घट रूपवाला है। दूसरा यह भी कहना ठीक ठहरेगा कि—'देख नीले आकाशको' पर वास्तवमें आप जिसे आकाशकी परछाई समझ रहे हैं वह आकाशके अवकाशमें रहनेवाले तमकी ही छाया है आकाशकी नहीं है ॥ ५३ ॥

किंचाभासोऽपि तस्यैव भवति परतो यत्परिच्छेद्यमाहुः ।
ब्रह्माभासो गृहीतो यदि भवति तदा तत्परिच्छिन्नता स्यात् ॥
देशात्कालादनन्तं न कथमपि परिच्छिद्यते वस्तुतो वा ।
तस्मादाभासभाषां त्यजत भजत भो योगिरामानुजार्य्यम् ॥५४॥

महाराज—बोले कि—'ए अद्वैतिन्! दूसरी बात यह है कि—आभास भी उसी चीजका हो सकता है जो परिच्छेद्य (जुदी की जाने योग्य) वस्तु हो।' जो सर्वव्यापक है उसकी परछाई कैसी ! यदि ब्रह्मका आभास मायामें स्वीकार कर लोगे तो आपका ब्रह्म व्यापक न रहेगा परिच्छिन्न हो जायगा। आपको यह बात सदा ध्यान रखनी चाहिये

कि जो अनन्त रहता है उसका देश, दिशा और कालसे परिच्छेद (विभाग) नहीं होता । इस कारण ए भट्टपाद । आभास आभास कहना छोड़कर योगीराज श्री रामानुजाचार्य्यके चरणोंका भजन करो ॥ ५४ ॥

भ्रान्ति चेमां भजसि भजसे रज्जुसर्पावभासम् ।
दृष्टान्तोऽयं तव न घटते पश्य वैरूप्यदोषम् ॥
रज्जुः सर्पो भ्रमभवमथाज्ञानमेते विभिन्नाः ।
दार्ष्टान्ते तु प्रतिभट तव ब्रह्मणो नातिरिक्तम् ॥ ५५ ॥

दूसरी बात यह है कि—'आप जो रज्जुमें सर्पके अवभासका दृष्टान्त संसारको भ्रामिक सिद्ध करनेके लिये देते हैं' यह दृष्टान्त भी आपका ठीक नहीं है । क्योंकि—यह सम नहीं विषम दृष्टान्त है । इस कारण उचित नहीं जचता है । देखो ! जैसे रज्जुमें सर्पका भ्रम होता है तो रज्जु एक जुदी चीज और सर्प जुदी चीज है । जुदी चीज सर्पकी भ्रान्ति अंधेरेमें रज्जुको देखकर ही होती है । पर जिस-पर आपने रज्जु सर्पके भ्रमका दृष्टान्त दिया है उस विषयमें तो विचार करके देख ले । तेरे यहाँ ब्रह्मसे भिन्न कुछ वस्तु ही नहीं है तब फिर ब्रह्ममें किसकी भ्रान्ति होगी ॥ ५५ ॥

दृष्टान्तानां न भवति सखे ! कापि दार्ष्टान्तसाम्यम् ।
राजा सिंहः कविभिरुदितः केवलं शौर्य्ययोगात् ॥
चन्द्रं प्राहुर्मुखमपि परे केवलाह्लादकत्वात् ।
गां वाहीकं कथयति जनस्तद्गतात् पाशवाच्च ॥ ५६ ॥

अद्वैती भट्टपाद—यह सुनकर बोले कि—'महाराज ! दृष्टान्त और दार्ष्टान्त इन दोनोंकी सर्वांशमें तो कभी समता नहीं होती किन्तु

किसी वातकी समता लेकर दृष्टान्त दिये जाते हैं। जैसे कि—
'सिंहकी केवल शूरता लेकर राजाको सिंह कह दिया करते हैं।
चंद्रमाके समान होनेवाली थोड़ीसी प्रसन्नताको लेकर मुखको चाँद
कह देते हैं। किसी ग्रामीणके भयंकर मूर्खपनको देखकर उसे बैल
कह गुजरते हैं।' इन तीनों स्थलोंमें राजा सर्वांशसे सिंह मुख चाँद
तथा किसान पशु नहीं होता केवल कुछ २ बातोंको लेकर प्रयोग
हो जाता है इसी तरह आपको रज्जु सर्पका दृष्टान्त भी एकदेशी
समझना चाहिये ॥ ५६ ॥

अंगीकुर्मः प्रकृतवचने नास्ति कश्चिद् विवर्तो।
दार्ष्टान्तेऽस्मिन् यदि तव भवेत् एकदेशोऽपि तावत् ॥
सद्वा चिद्वा यदपि किमपि ब्रह्म ते सत्यमेकम्।
शेषा सर्वा वचनरचना व्योमपुष्पायमाणा ॥ ५७ ॥

महाराज—बोले कि—'ए भट्टपाद! जो तुमने 'राजा सिंह
है, मुख चाँद है तथा ग्रामीण निरा पशु है इन तीनों स्थानोंमें किसी
बातकी थोड़ी समानता लेकर ये प्रयोग हुए हैं।' यह कहा है।
इसमें हमें कुछ भी विशेष कहना नहीं है। पर जिस बातपर आप
इनका दृष्टान्त दे रहे हैं उसमें एक देशकी भी समता मिल जाती तब
भी मुझे कुछ कहना नहीं था। आपका सदचिद कुछ भी हो एक
ब्रह्म ही सत्य है बाकी की सारी बातें तो आकाश पुष्पकी तरह मुखसे
कहने मात्र की हैं तब फिर ब्रह्मके सिवा कोई पदार्थ वास्तविक ही
नहीं है तो फिर ब्रह्ममें किसका भ्रम होगा इस कारण हे अद्वैतिन्।
तुमारा कहना बन नहीं सकता कि रज्जुमें सर्पके भ्रमकी तरह संसार
भ्रामिक है ॥ ५७ ॥

जीवेऽज्ञानं वसति किमथो ब्रह्मणि ब्रूहि नाथम्।
जीवस्तावन्ननु तव मते कल्पितो नास्ति वस्तु ॥
ब्रह्मस्थं चेत्तदपि न भवेद् ब्रह्म ते ज्ञानमात्रम्।
तेजःपुञ्जे ज्वलति लभते नान्धकारः प्रवेशम् ॥ ५८ ॥

हे अद्वैतिन्! यह तो बताओ कि—'तेरा संसारनिर्माता भ्रम जीवमें रहता है या ब्रह्ममें रहता है? यदि यह कहो कि—जीवमें यह अज्ञान है, तो जीव तो आपके यहाँ कल्पित वस्तु है वास्तविक कोई चीज नहीं है। यह अड़चन देखकर यह कहने लग जाओ कि—'यह अज्ञान ब्रह्ममें ही है।' तो यह भी कहना नहीं बन सकता क्योंकि—'आप तो ब्रह्मको ज्ञानस्वरूप मानते हैं फिर उसमें अज्ञान आही कहाँसे सकता है। देखो! तेज और अन्धकार ये दोनों प्रतिद्वन्दी पदार्थ हैं जहाँ तेज है वहाँ अँधेरा नहीं रह सकता तथा जहाँ अँधेरा रहता है वहाँ तेज नहीं होता। इसी तरह ज्ञान और अज्ञान ये दोनों प्रतिद्वन्दी पदार्थ है जहाँ ज्ञान है वहाँ अज्ञान नहीं रह सकता तथा जहाँ अज्ञान है वहाँ ज्ञानकी कोई बात नहीं है ॥५८॥

तस्मिन् ब्रह्मण्यथ च भवताऽऽरोप्यते चेत् प्रपञ्चः।
कस्तद्द्रष्टा भवति मतिमन्! ब्रह्म चेन् मौनमास्ताम् ॥
नान्धः पश्यत्यकरणमहो ब्रह्म ते केन पश्येत्।
तस्मात्तस्मिंस्तदुचितगुणाश्चिन्तनीया विशिष्टे ॥ ५९ ॥

ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप और एक सत्य ब्रह्ममें प्रपचका आरोप रज्जुमें सर्पके आरोपकी तरह करोगे तो इस प्रपच और ब्रह्मसे भिन्न एक द्रष्टा भी चाहिये। यदि यह कहो कि—'इसका द्रष्टा ब्रह्म है तो यह बात बन नहीं सकती क्योंकि—ब्रह्मके लिये उसे देखनेको उपकरण-की आवश्यकता है बिना नेत्रोंके अन्धा किसीको भी नहीं देख सकता

इस कारण ए भाई ! चिद् और अचिद् विशिष्ट ब्रह्ममें उचित गुणोंकी चिन्तना करनी चाहिये ॥ ५९ ॥

एवं वाच्यं भवति जवनोऽपाणिपादो गृहीता ।
निर्नेत्रः पश्यति स सकलं स शृणोति ह्यकर्णः ॥
संपन्नं मे ननु यदि भवान् एवमङ्गी करोति ।
सिद्धं ब्रह्म त्वदधिवदनात् सर्वसामर्थ्ययुक्तम् ॥ ६० ॥

अद्वैती—भट्टपाद यह सुनकर बोला कि—महाराज ! यह न कहो कि—उसे देखनेके लिये किसी उपकरणकी आवश्यकता है क्योंकि मुण्डक उपनिषदमें लिखा है कि ' वह ब्रह्म बिना पैरोंका है पर वेगवाला है तथा बिना हाथोंका है पर ग्रहण करनेकी शक्तिकी कमी नहीं है बिना हाथोंके भी खूब ग्रहण करता है । नेत्र नहीं तब भी सब कुछ देख लेता है । उसके कान नहीं पर ऐसा कोई शब्द नहीं जिसे यह न सुनता हो ।

महाराज अद्वैती भट्टपादके वचन सुनकर बोले कि—' ए अद्वैतिन् ! यदि ऐसा स्वीकार करते हो कि—बिना ही इन्द्रियोंके वह ब्रह्म कुछ देखता सुनता है तो आपके ही मुखसे मेरा यह कथन सिद्ध हो गया कि—' ब्रह्म सभी शक्तियोंसे पूर्ण संपन्न है । ' फिर आपके ही मुखसे निर्गुणके स्थानमें यह सगुण सिद्ध हो गया है ॥ ६० ॥

वाचातीतं किमत मनसा नेति नेतीति युष्मद् ।
ब्रह्मानादि स्वनुभवमयं तद्धि वेदो न वेद ॥
वेदो यावद् गुणमनुवदेन्नास्य पारं प्रयायात् ।
तद् वैशिष्ट्यं तव न घटते तिष्ठवोतिष्ठ याहि ॥६१॥

अद्वैती—यह सुनकर बोला कि—महाराज !
केनोपनिषदमें कहा है कि—' वाणी ब्रह्मको नहीं कह सकती

पर ब्रह्मकी शक्तिसे ही वाणीमें बोलनेकी शक्ति आ रही है। मन उसका मनन नहीं कर सकता पर जिसके द्वारा यह मन, मन बना हुआ है वह ब्रह्मकी ही दया है वह ब्रह्म अनादि एवम् अनुभवमय है उसे वेद भी नहीं जानता। वेदका तो काम यही है कि—उसके गुणोंका बखान करते रहना फिर भी तो यह पार नहीं पाता इस कारण आपका भी वैशिष्ट्य घटित नहीं होता। भले ही आप बैठें चाहें जाये या खड़े हों ॥६१॥

मा गा रोषं भज न विकृतिं देहि दोषं न मे त्वम्।
श्रद्धत्स्वैतन्मम हितवचः पश्य मां मित्रचक्षुः॥
वेदो ब्रह्मप्रवचनविधौ यानभिप्रैति भावान्।
ते नो यावद् गुणकथनतामात्रतः स्युः कृतार्थाः॥ ६२॥

महाराज उस अद्वैतीके ऐसे वचन सुनकर बोले कि—' आपको इस शास्त्र चिन्तनके समयमें क्रोध क्यों आया! आप अपने विकारोंको रोकें हमें दोष क्यों देते हैं। मुझे मित्रके रूपमें देखें मेरे वाक्योंपर श्रद्धा करें क्यों कि—यह जो मैं कह रहा हूँ यह सब आपके कल्याणके लिये ही कह रहा हूँ देखो! वेद भगवान् निरूपण करती बार जिन जिन भावोंके अभिप्रायको व्यक्त करते हैं वे सब भाव हमारे लिये ब्रह्मके गुणोंका कथन करके ही सफल हो जाते हैं॥ ६२॥

नेतीत्याद्यश्रुतिभणितिभिस्तन्महिम्नो निषेधः।
ज्ञानं कर्माखिलमपि बलं तस्य नित्यं स्वभावात्॥
आनन्दज्ञो न भयमयते ब्रह्मणो यो हि विद्वान्।
इत्याद्या वै विविधनिगमास्तं स्फुटं स्फोटयन्ति॥ ६३॥

' यह नहीं, यह नहीं ' यह-जो निषेध है वह इयत्ता (इतनेपन) का ही निषेध है कि—उसकी इतनी ही महिमा नहीं इससे भी

अधिक है। उस सर्वेश सर्वात्माके ज्ञान और कर्म ये दोनों स्वाभा-
विक नित्यबल है। 'जो उस ब्रह्मके आनन्दका अनुभव किये बैठा
है वह किसीसे नहीं डरता। ऐसे अनेकों ही वैदिक वचन उस
ब्रह्मका प्रतिपादन करते हैं ॥६३॥

अवधार्य्य तद्वचांसि प्राह अद्वैताग्रणी ग्रहो दशमः ।
बुद्धिद्वैधमबुद्ध्वा मुह्यति पथिको यथा पथिद्वैधे ॥ ६४ ॥

अद्वैतियोंका अग्रणी यह दशमग्रह भट्टपाद महाराजके वचन सुनकर
एक विचित्र स्थितिमें चला गया। जैसी दशा राह चलनेवाले पथिककी
दो रास्ते देखकर हो जाती है कि—'इसपर चलूँ या उसपर चलूँ।'
ऐसे ही संदिग्ध भावसे अपने हठाग्रहको साथ लेकर बोला ॥ ६४ ॥

अज्ञाने शक्तिद्वयम् आवरणाख्या परा च विक्षेपा ।
ब्रह्मावृणुते प्रथमा विक्षेपाख्या जगत्प्रपंचयति ॥ ६५ ॥

अद्वैती भट्टपाद—बोला कि—'मायामें आवरण और विक्षेप
नामक दो शक्तियाँ हैं। पहिली शक्तिका तो यह कार्य्य है कि—
ब्रह्मकी ज्ञान शक्तिको ढक देना तथा दूसरी शक्तिका कार्य्य जगद्रूपी
प्रपंचको रच देनेका है ॥ ६५ ॥

इति चेद् विचित्रमेतद्,
विद्वत्ता कौशलं सखे ! भवतः ।
ब्रह्मप्रकाशनाश्येन,
अज्ञानेन आवृतं कथं ब्रह्म ॥ ६६ ॥

महाराज—बोले कि—'ए मित्र ! ये बातें तो आपकी कोरी
पंडिताईकी करामातमात्र हैं। भला कहीं ऐसा हो सकता है कि—
'ब्रह्मके प्रकाशसे नष्ट होनेवाला अज्ञान ही ब्रह्मको ढकनेमें समर्थ
हो जाय' ॥ ६६ ॥

ज्ञानं ब्रह्मेति वदन् यो—
अज्ञानेनावृतं च तद्वेद ॥
सोऽयं स्ववाग् विरोधम्,
न वेद वेदं बिभर्चि भारमिव ॥ ६७ ॥

जो ब्रह्मको ज्ञानस्वरूप कहता हुआ उसे अज्ञानसे फिर ढका हुआ जानता है वह पुरुष यह नहीं जानता है कि—'मेरे इस बातके कहनेमें क्या परस्पर विरोध आता है वह तो केवल भारकी तरह वेदको केवल लादेमात्र फिरता है।' ॥ ६७ ॥

सर्वज्ञत्वादिनिखिलगुणा ईश्वरे वर्तमाना।
मायोपाधिश्रित इह स तु ब्रह्मणो भिन्न एव ॥
ब्रह्माग्राह्यं न भजति गुणान् नैव जातिक्रियेच।
छिन्ने भिन्ने जगति न नभश्छिद्यते भिद्यते वा ॥६८॥

अद्वैती भट्टपाद—यह सुन कहने लगे कि—सर्वज्ञत्व आदि सारे गुण ईश्वरमें हैं। यह ईश्वर मायोपाधिक है यानी अनादि अविद्याके माया और अविद्या ये दो भेद हैं इनमें मायामें जो प्रतिबिम्ब है वही मायाको अपने अधिकारमें करके ईश्वर हो गया है। यह ईश्वर ब्रह्म नहीं ब्रह्मसे भिन्न है। ब्रह्म तो अग्राह्य है उसमें जाति और क्रिया कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार आकाशके अवकाशमें रहनेवाले घरके फूटने और घड़ाके टूटनेसे आकाश टूटता फूटता नहीं है। उसी तरह इस संसारके बनने बिगड़नेसे ब्रह्म बनता बिगड़ता नहीं है ॥ ६८ ॥

इत्याहुर्ये सुमतिविधुराः क्लेश एवास्ति तेषाम्।
ब्रह्म लोके न भवति समोनाधिकस्तस्य कश्चित् ॥
तस्यैवोक्ताः परममहतो ज्ञानशक्तिक्रियाद्याः।
कोऽन्यस्तस्मात्पुनरिह कुतश्चेश्वरः कल्पनीयः ॥ ६९ ॥

महाराज—अद्वैती भट्टपादके वचन सुनकर उसे समझाने लगे कि—' ए अद्वैतिन्! जो जन आपके कथनके अनुसार कहते हैं उन्हें आप पूर्ण मतिमान् न समझें क्योंकि—इस वादमें भी उन्हें सिवा कष्टके दूसरा कुछ भी नहीं है । देखो! श्वेताश्वतर उपनिषदमें लिखा हुआ है कि—'वह ब्रह्म एक है न तो उसके कोई बराबरीका ही है और न अधिक ही है उस परम महत ब्रह्मके ज्ञान और क्रिया बल स्वाभाविक हैं । जब उस परमात्मासे कोई भिन्न ही नहीं है तो फिर ईश्वरकी कल्पना क्यों और कहँसे करनी चाहिये ॥ ६९ ॥

अग्राह्यो गृह्यमाणः सतनुरतनुमान् दृश्यमानोऽप्यदृश्यो ।
अवर्ण्यश्चादित्यवर्णः करचरणयुतोऽपाणिपादः स एव ॥
एकोऽ वेद्यश्च वेद्यः स भवति भवतां चिन्तनीयोऽप्यचिन्त्यः ।
कस्तस्मादीश्वरोऽन्यो भवति शुभगुणो ब्रह्म किं ते दरिद्रम् ॥७०॥

वह परमात्मा देखनेमें आया हुआ भी अदृश्य, ग्रहण करनेमें आया हुआ भी अग्राह्य तथा साकार भी निराकार है । है वह आदित्यकी तरह तेजोमय पर वर्ण उसका कोई नहीं है कर हैं चरण हैं फिर भी वह हाथ पैरोंसे निहीन है । ध्यान करने योग्य भी ध्यानमें न आनेवाला जानने योग्य भी जाननेकी वस्तुओंसे परे एक है फिर बताओ कि—' उस परमात्मासे भिन्न कौनसा शुभगुणशाली ईश्वर है जब आपके ब्रह्मके पास कुछ नहीं तो क्या तुम्हारा ब्रह्म सोरहआने दरिद्र ही है । जो भगवानके ध्याननिष्ठ सच्चे शरणागत भक्त हैं उनके लिये वह देखनेकी चीज ग्रहण करनेकी और देखने आदिकी वस्तु भी है तथा जो अविद्याके गीत गा रहे हैं उनके लिये वह कोसों दूर परे हैं ॥७०

वेदेषु भेदश्रुतयः समस्ताः ।
उपासनार्था इति योऽभिवेद ॥

स तेष्वभेदश्रुतयः समस्ताः ।
उपासनार्था इति किं न वेद ॥७१॥

माया जीव और ब्रह्मको भिन्न बनानेवाली श्रुतियोंको जो उपासनाके लिये मानते हैं मुख्य रूपसे स्वीकार नहीं करते वे दुराग्रही जन सारी अभेदवादिनी श्रुतियोंको ही उपासनाके लिये क्यों स्वीकार नहीं कर लेते । यानी तीन तरहकी श्रुतियाँ हैं माया और ब्रह्मको भिन्न कहनेवाली अभिन्न कहनेवाली और दोनोंका समन्वय करनेवाली । इनमें अद्वैत वादियोंको द्वैतवादिनी और समन्वयवादिनी श्रुतियां गौण तथा द्वैतवादियोंको अद्वैत और समन्वयवादिनी गौण तथा समन्वयवादियोंको किसीको भी गौण नहीं मानना पड़ता । विशिष्टाद्वैती समन्वयवादी ही हैं ॥७१॥

न स्वाप्निकं मे जगदस्ति मिथ्या ।
तज्जाग्रतः कञ्चन भेद एव ॥
न चापि शुक्तौ रजतं हि मिथ्या ।
यावद्धि तस्मिन् रजतत्वबुद्धिः ॥७२॥

हमारे यहां जाग्रत और स्वप्नके संसारमें कोई अन्तर नहीं है न शुक्तिमें रजत (चांदी)का ज्ञान होना ही झूठा है जब तक कि—उसमें रजतकी बुद्धि है । अबतकके सारे दार्शनिक सत् असत् अन्यथा अनिर्वचनीय आत्म और अख्याति इन छः ख्यातियोंको मानते हैं। ख्याति नाम प्रख्याति या प्रसिद्धिका है । सत्का अर्थ विद्यमान, असत्—अविद्यमान, अन्यथा—कुछका कुछ और अनिर्वचनीय—न झूठ न साँच तथा बुद्धि अप्रतीति ये छः अर्थ हैं । इनमें अद्वैती ऐसा मानते हैं कि—' सिपीमें जो घामके पड़नेसे चादी चमकती है इसे न तो झूठा ही कह सकते हैं क्योंकि—चमक रही है और न सच्ची ही

कह सकते हैं क्योंकि—पास जानेपर नहीं जंचती इस कारण ' है और नहीं ' दोनों ही वातें नहीं कहीं जा सकतीं इससे अनिर्वचनीय ही प्रसिद्ध है। इसपर सत्ख्यातिवादी भगवान् रामानुजाचार्य्यका यह कहना है कि—' प्रकृतिके सारे तत्व आपसमे मिले हुए है सिपीमें बहुतसे वैसे परमाणु घामके लगनेसे चमक उठते हैं इस कारण चाँदीका भान होता है यह भान झूठा नहीं है क्यों कि—उनसे उसे चांदीका व्यवहार नहीं होता सिपीके अधिक है इस कारण सिपीका व्यवहार हो जाता है ॥७२॥

सोऽहं ब्रह्मास्म्यहमिति तथा तत्त्वमस्यादिकेषु ।
वाक्येष्वैक्यं तनुतनुमतोरैक्यवत् साधनीयम् ॥
नोहः कश्चित्पदविरचितो नार्थतो गौरवं वा ।
नोवा क्लेशो यतिवरमते लक्षणालक्षणीयः ॥ ७३ ॥

ये जो महावाक्य हैं कि—सोऽहम्–वह मैं हूँ अहंब्रह्मास्मि–मैं ब्रह्म हूँ, और तत्त्वमसि–वह ब्रह्म तू है इनमें शरीरी और शरीरकी तरह ऐक्य सिद्ध करना चाहिये। जैसे शरीर विशिष्ट शरीरी एक तथा शरीर और शरीरी जुदे है उसी तरह शरीररूपी जीव विशिष्ट ब्रह्म एक और शरीर जीव और उसका शरीरी ब्रह्म उनसे जुदा हैं। इस मतमें न तो यह गौरव है और न अर्थ गौरव ही है न आपके मतकी तरह भागत्याग लक्षणा ही करनी पड़ती है ॥ ७३ ॥

अज्ञानं सदसद् विलक्षणमतो वक्तुं न यच्छक्यते ।
वेदोऽनिर्वचनीयमाह तदिदं तुच्छं न मन्यामहे ॥
सत्त्वाऽसत्त्वतया प्रतीतिमयते सर्वःपदार्थः क्षितौ ।
तत्रानिर्वचनीयतेति भवताऽनिर्वाच्यमेवोच्यते ॥ ७४ ॥

अद्वैती—यह सुनकर बोला कि–' अविद्यारूप अज्ञान सद् और असत् (है और नहीं है) इससे विलक्षण है । वेद उसे अनिर्वचनीय मानता है इस कारण यह तुच्छ है ऐसा नहीं मान सकते पर यह ज्ञान होनेपर नहीं रहता ।

महाराज—उस अद्वैतीसे बोले कि–'संसारके सारे पदार्थोंके भाव और अभाव ये दो ही विभाग हैं । इनमें यह अनिर्वचनीय तीसरा पदार्थ कहाँसे आटपका । अनिर्वचनीय कोई चीज नहीं है इस कारण अनिर्वचनीय यह कहना ही न चाहिये ॥ ७४ ॥

अज्ञानं वागतीतं वदति यदि भवान् भ्रान्तिमद रज्जुसर्पे ।
सोऽयं सर्पभ्रमस्ते किमवचनतया सर्पता हेतुना वा ॥
आद्येऽनिर्वाच्यपक्षे किमिति भवति भीः सर्पबुद्धेरभावे ।
सर्पत्वेन प्रतीतिर्यदि भवति तदास्त्वन्यथाख्यातिदोषः ॥ ७५ ॥

देख अद्वैतिन् ! यह जो तुमारा कहना है कि–'रस्सीमें जो सर्पका भ्रम है यह अज्ञान न, सत् कहा जा सकता है और न असत् ही कहा है । क्योंकि सत् पदार्थ सदा बना रहता है पर भ्रम तो बोध होनेपर नष्ट हो जाता है इस कारण वह सत् नहीं कहला सकता । असत् न कुछको कहते हैं यहाँ तो रज्जुमें अँधेरेमें सर्प भासता है इस कारण इस भ्रमको सत् असत् कुछ भी न कह सकनेके कारण अनिर्वचनीय है । ऐसा कहते हैं । इसमें हमारा यह प्रश्न है कि—' यह जो रज्जुमें सर्पका भ्रम है यह सर्पपनके कारण है वा अनिर्वचनीयपनके कारण है ? यह हो क्यों रहा है ? यदि यह कहो कि—' अनिर्वचनीयपनके कारण है तो यहाँ यह शंका होती है कि—सर्पके ज्ञानके विना व विना सर्पके अनुभवके यह सर्प है यह ज्ञान कैसे हो सकता है यदि यह कहो कि–' सर्पपनसे ही हो रहा है तो इसे अन्यथा

ख्याति कहो अनिर्वचनीय मत कहो । कुछका कुछ दीखनेको न्याय वैशेषिक शास्त्रमें अन्यथाख्याति कहते हैं ॥ ७५ ॥

माया तावत् प्रकृतिरुदिता तत्र मायी महेशः ।
अस्मान्मायी सृजत इति यच्छ्रूयते श्रोत्रियेभ्यः ॥
तैस्तैश्चान्यैर्विविधवचनैरेष निर्धारितोऽर्थः ।
सर्वज्ञत्वं प्रकृतिविकृतं न स्वभावमयुक्तम् ॥ ७६ ॥

अद्वैती—बोला कि—श्वेताश्वतर उपनिषदमें लिखा है कि—माया नाम प्रकृतिका है और मायी ईश्वरका नाम हैं । इस मायासे ही मायी ईश्वर इस सारे विश्वको रचता है । ऐसे ही दूसरे दूसरे वचनोंसे हमारे मतकी सारी बातें सिद्ध हैं । प्रकृतिसे विकृत होना तथा सर्वज्ञ बनना यह सब ईश्वर मायाका आश्रय करके बनता है तथा अविद्यासे जीव होता है फिर वह भोग और भोगायत न बनानेके लिये पंचीकरण प्रक्रियासे सारा संसार रचता है ब्रह्म नहीं रचता। फिर आप हमारे कथनपर क्यों विश्वास नहीं करते ॥ ७६ ॥

दिव्यं ब्रह्माप्रकृतमिति तद् दिव्यमेतच्छरीरम् ।
इच्छा बुद्धिर्बलमथ कृतिः सर्वमेतस्य दिव्यम् ॥
तत्सर्वज्ञं स हि नरसखो ब्रह्म नारायणाख्यः ।
ब्राह्मी सृष्टिः प्रभवति पुनः सैष वेदान्तपन्था ॥७७॥

महाराज—इस अद्वैतीका जाड्य देखकर उससे बोले कि—ए भट्टपाद ! ब्रह्म दिव्य एवम् अप्राकृत है इस कारण उसका शरीर भी दिव्य ही है । इसके—इच्छा, ज्ञान, बल और कृति ये सब भी दिव्य ही हैं । यह सर्वज्ञ तथा सारे चेतनोंका सहजमित्र है । उस ब्रह्मका नाम नारायण है । यह सारी सृष्टि ब्रह्मसे ही उत्पन्न हुई है। यही वेदान्तका सच्चा सिद्धान्त है ॥ ७७ ॥

माया शब्दः परमपुरुषे कार्य्यवैचित्र्यबोधी ।
ज्ञाने मायापदमपि परेऽधीयते कोशकाराः ॥
एवं शान्ते प्रकृतविषये मायिकत्वस्य वादे ।
का ते शंका पुनरिह मते ब्रूहि रामानुजीये ॥७८॥

ए अद्वैतिन् ! देख अब मैं तुझे 'माया' शब्दका भी अर्थ बताये देता हूँ । माया शब्द भी परमपुरुषमें विचित्र कार्य्यका बोधन् करता है । कोशकार इस शब्दका ज्ञान अर्थ भी करते हैं । देख ! हमने माया शब्दका अर्थ कर दिया इससे तेरे मायावादका अपने आप खण्डन हो गया जिसे आप बडी देरसे गा रहे थे । अब तू सच्चे हृदयसे बता दे कि—तुझे अब श्रीलक्ष्मणार्य्यके मतमें कौनसी शंका है॥७८

अद्वैतं परमं प्रशस्तमिति यः प्रत्येति वेदादिषु ।
मायावादशतप्रवाहसुदृशा ब्रह्माविशेषं पुरा ॥
आचार्यस्य विशिष्टवादशरणिं श्रुत्वा स विश्वासवान् ।
कृत्वा दीपशिखां करे मृगयते क्वाद्वैतवादो गतः ॥७९॥

जो भट्टपाद पहिले अद्वैती था अद्वैतको सबसे अच्छा समझता था जिसके मनमें यही सिद्धान्त वैदिक बना हुआ था कि—'ब्रह्म निर्विशेष निर्गुण निर्विकल्प एक है यह सारा संसार अनिर्वचनीय मायासे आकाश कुसुमकी तरह भास रहा है' वह हमारे आचार्य चरणोंकी विशिष्टाद्वैतवादकी रीति सुनकर परम प्रसन्न हुआ उसकी आस्था विशिष्टाद्वैतवादपर जम गई । उसे विश्वास हो गया कि—विशिष्टाद्वैत ही ठीक है । पीछे वह लालटैन लेकर अद्वैतवादको देखने लगा तो वह उसके सामने ऐसा छिप गया कि—ढूंढनेपर भी नहीं मिला ॥ ७९ ॥

एके भादुरनुत्तमं क्षितितले शारीरकं शाङ्करम् ।
भापन्ते कतिचिद् विवेककुशलाः श्रेयःपदं कापिलम् ॥
तावत् सर्वे इमे स्तुवन्तु रसिकास्तत्तत् कवीनां रसान् ।
यावत्पानपथं न याति मधुरा रामानुजी वाग्झरी॥८०॥

वह प्रसन्न होकर कहने लगा कि—कुछ लोग तो ऐसा कहते हैं कि—ब्रह्म सूत्र शाङ्करभाष्यकी बराबर कोई नहीं है कोई २ विवेकशील कपिलदेवके सांख्यशास्त्रको ही कैवल्यप्रद माने बैठे हैं। इसी तरह कोई किसीको और कोई किसीको सर्व श्रेष्ठ मान रहा है पर ए रसिक जनो! आप लोग उतने ही समय तक उनके ग्रन्थोंकी प्रशंसा करोगे जब तक कि—आपने सामने श्रीभाष्यरूपी अमृत नहीं आता उसके पूरे समझमें आ जानेपर तो आप सारी चीजोंको भूल जावेंगे ॥ ८० ॥

योऽस्मद् विपक्षमतिदक्षमहारथादीन्,
एकः प्रक्षालयति वैष्णवसव्यसाची ।
तस्मिन्ननन्तसदनं प्रतियात्यनन्ते,
श्रीवैष्णवा ! वदत वः क इहावलम्बः ॥८१॥

जिस अकेले वैष्णव सिद्धान्तोंके अर्जुनने हमारे विपक्षके बड़े २ महाविद्वान् महारथियोंको शास्त्रार्थके मैदानमें अनायास पछाड़ दिया था। उस श्री अनन्ताार्य्यके भगवद् लोक चले जानेपर ए श्री वैष्णवो! यह तो बतादो कि—अब तुमारा सहारा क्या है ॥ ८१ ॥

॥ वीथिका प्रलाप ॥

सुहृदां हलिनां बलाहकः ।
कुलपद्माकरपद्मिनीपतिः ॥
अनुजीविचकोरचन्द्रमाः ।
क्व गतो नः कुलपालकः प्रभान् ॥८२॥

जो अपने सुहृदोंकी सारी आवश्यकताओंको इस प्रकार पूरी करता था जिस प्रकार कि—' समयपर बरसनेवाला मेघ किसानोंकी पूरी करता है। जिसप्रकार कमलिनीके पति सूर्य्यकी किरणोंसे सारी कमलिनियाँ और कमल सरोवर खिल उठते हैं उसी तरह आप प्रतिवादी भयंकर कुलरूपी कमलोंको विकसित करनेवाले दिनकर थे। जिस प्रकार चकोर चाँदको देखकर प्रसन्न रहते हैं चांद ही उनका जीवन है इसी तरह सारे अनुजीवी आपको देखकर प्रसन्न रहते थे। वह श्रीवैष्णव कुलका पालक पुरुष हमारी चरम चक्षुओंसे कहां ओझल हो गया जो खोजनेपर भी आज देखनेमें नहीं आता ॥८२॥

सततं यतते हिताय मे ।
विपरीतं स्मरते न किंचन ॥
प्रथमः शुभचिन्तकः क्षितौ ।
क्व स वीरो गतवान् गृहान्मम ॥८३॥

जो सच्चा वीर मेरे भलेके लिये सदा प्रयत्न करता था। जिसे मेरे अपराधोंका कभी स्मरण भी नहीं आता था। जो मेरा इस भूमिपर प्रथम कोटिका शुभचिन्तक था। वह वीर आज मुझे तड़फता छोड़कर मेरे घरसे कहाँ चला गया ॥ ८३ ॥

हितमेव सदाऽनुशोचति ।
प्रियकारी मधुरं च भाषते ॥
शुभगाकृतिराप्तसम्मतः ।
क्व स वीरो गतवान् गृहान्मम ॥ ८४ ॥

जो मेरा सदा ही शुभ चाहता रहता था। जो मुझसे सदा ही प्रिय बोला। जिसे इस संसारके सारे लोग मानते थे। जिसकी सूरत

देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाय। वह सच्चा बहादर आज मुझे बिल-खती छोड़कर अकेला ही मेरे घरसे वहां चला गया ॥ ८४ ॥

न पिवामि पयस्त्वया विना ।
न च भुंजे किमपि त्वया विना ॥
इति यस्य मतं मया विना ।
क स वीरो गतवान् गृहान्मम ॥ ८५ ॥

देख ! मैं तेरे बिना कुछ भी नहीं खाऊंगा। और तो क्या दूध भी नहीं पिऊंगा। मेरे विषयमें जिसका यह मत था वह वीर आज मुझे विलाप करती छोड़कर किस महायात्राको चल दिया ॥ ८५ ॥

रहसि प्रणयेन पृच्छति ।
कमनीयं प्रथमं प्रयच्छति ॥
अपि गुह्यतमं निवेद्यते ।
अधनानां धनदो गतः क सः ॥ ८६ ॥

अकेलेमें आप अत्यन्त प्रेमके साथ पूछा करते थे कि—' कोई आवश्यकता तो नहीं है। यदि उनकी किसी प्रिय चीजके लिये भी कह दिया तो सानन्द दे दिया करते थे। अपने शिष्योंसे वे किसी बातका भी दुराव नहीं रखा करते थे उन्होंने अपना सारा धन हीन दीनोंके सेवामें ही लगाया था। आज मैं अपनी उस महानिधिसे सूनी हो गई हूं ॥८६॥

सहते स्वजनैः कृतं शतम् ।
न परेषां सहते पराभवम् ॥
विपमेषु पुरः प्रदृश्यते ।
अशरणानां शरणो गतः क सः ॥ ८७ ॥

आपका यह सहज स्वभाव था कि—अपने आश्रितोंको कभी भी अपना बडप्पन नहीं दिखाते थे। स्वजन शिष्य और आश्रितजन उनका अपचार भी कर लेते थे तो उसे इस प्रकार सह लेते थे जैसे पिता पुत्रके सह लेता है। पर बड़ेसेबड़ेका वे अणुमात्र भी अपचार सहन नहीं कर सकते थे जब उनके निजी जन बुरी स्थितिमें फस जानेपर उन्हें याद करते थे तो आप अगाड़ी दीखते थे उन्होंने वैरियोंको कभी पीठ नहीं दिखाई। जिनका इस संसारमें कोई ठिकाना नहीं था उनका यह अडिग ठिकाना था ऐसे महापुरुष न जाने मेरे मेरे किस अपराधसे रुष्ट हो मुझे लिखता छोडकर चल दिये ॥८७॥

भवता भवतापहारिणा ।
आश्रयदानेन पुरा प्रवर्धिता ॥
इयमाश्रितवल्गुवल्लरी ।
विरहेऽनन्त ! तवाद्य सीदति ॥ ८८ ॥

हे संसारके तीनोंतापोंके मिटानेवाले ! आपने जिस वैष्णवसिद्धान्त प्रवर्द्धिनी सुहायनी लताको अपना विशुद्ध संश्रय देकर बढाया था। वही आपके आश्रयसे बड़ी होनेवाली लता हे अनन्तधन ! आज तेरे विना सूखी चली जा रही है ॥ ८८ ॥

सकृदेहि भव प्रियातिथिः ।
चरणौ ते शरणं वृणीमहे ॥
अपि केवलमेकदा प्रिय !
स्वजनानां जन ! देहि दर्शनम् ॥ ८९ ॥

एक वार आ ! हमारा प्रिय अतिथि हो, देख क्यों नाराज है मैं तो तेरे चरणोंकी शरण हूं। वलिहार हूं। नकुछ हूं। अधिक प्रार्थना

न मंजूर हो तो न सही पर एकवार तो ए अपने जनोंपर दया दृष्टि करनेवाले ! दर्शन दे दे ॥ ८९ ॥

इति वेंकटनाथवीथिका ।
गृहकोणे विरहानलाकुला ॥
करुणं विलपत्यनन्त ! ते ।
स्पृहणीया कलहंससंगिनी ॥ ९० ॥

हे अनन्त महापुरुप ! जिस वेंकटनाथकी वीथीको आप सच्चे हृदयसे चाहा करते थे जोकि आपके जीवनके साथ ही बंधी हुई थी वही अब इस प्रकार आपके चले जानेपर घरके कोनेमें अत्यन्त करुण स्वरसे रो रही है आप एक वार आकर इसके आसू तो पोंछ दें ॥९०॥

॥ वैराग्यके वचन ॥

पुरुषोऽन्य विरोधमाचरन् ।
कुरुते किं ननु पापसंचयात् ॥
परिहाय समग्रसंग्रहान् ।
मरणं चेच्छरणं करोति सः ॥ ९१ ॥

जिन महापुरुषोंके जीवनके लिये सारा ससार लालयित था वे महापुरुप भी न रहे तो भी न जाने मनुष्य दूसरोंके साथ वैर विरोध करता हुआ भी क्यों नही शोचता कि—' मैं पापकी गठरीको शिर-पर बाँधकर क्या करूंगा जब कि—' एक दिन आखिर मरना ही तो है । ' मनुष्य कभी नहीं शोचते कि—हम एक न एक दिन अवश्य मरनेवाले है फिर पाप भी क्यों कमाये ॥ ९१ ॥

बहु कुप्यति भूरि दृप्यति ।
मधुरक्लेशमुपाश्लिपत्यपि ।

न बिभेति कुतोऽपि दुष्कृतात् ।
नन्नु केयं जगतां नटान्धिका ॥ ९२ ॥

जरासी बातपर क्रोधके मारे पागल हो जाता है । थोड़ीसी उन्नति होते ही अहंकारका ठिकाना नहीं रहता । यद्यपि हजारों दुःखोंको पा रहा है तो भी पापोंसे नहीं डरता । न जाने आँखें होनेपर भी दुनियाँके लोगोंमें यह कहाँसे नटोंकासा अन्धापन आ गया है ॥९२॥

कृतमेतददः करिष्यते ।
व्रजतामग्रपदं धरिष्यते ॥
मुदितेन पुनश्चरिष्यते ॥
द्विषतां मौलिमणिर्दरिष्यते ॥ ९३ ॥

इस कार्यको मैं कर चुका अब यह और बाकी रहा है जिसे और कर गुजरूँगा । ये लोग उन्नतिकी दौड़मे अगाडी बढते चले जा रहे हैं मैं भी इनमें अगाड़ी कदम रखूँगा । इस तरह फिर प्रसन्न होकर विचरूँगा । इतने दुश्मनोंको तो नीचा दिखा चुका हूँ अब अपने इस सबसे बड़े बैरीको और पछाड़ दूँगा ॥ ९३ ॥

अभि संदधदित्यनेकधा ।
ह्रियतेऽसौ यदि कालहस्तिना ॥
क्रियते श्रम एव केवलम् ।
पथिकेनैव निकेतकारिणा ॥ ९४ ॥

यह अज्ञानी जीव रातदिन इन्हीं सकल्पोंको करता रहता है । यदि कालरूपी हाथीने मिलते ही कुचल दिया तो फिर इन सब कामोंमें इसका कोरा परिश्रम ही होता है जैसा कि—'राहगीरको एक रातके लिये नितनये घर बाधनेका होता है ॥ ९४ ॥

हसति श्वसतीह यावता ।
ममकारो वत तस्य तावता ।
मम वेश्म ममात्मजो मम ।
प्रमदा मे मम दाम दामजा ॥ ९५ ॥

यह मनुष्य जभी तक हँसता और श्वास लेता है उसी समय तक मैं मेरी करता रहता हे । उसी समयतक यह मेरा घर ये मेरे पुत्र तथा यह मेरी स्त्री यह मेरा धन रुपणी और जमाई है जब तक कि-मौत नहीं आती ॥ ९५ ॥

मम मे मम मे ममेति मे ।
मम मे मे मम मे ममेति मे ॥
इति मे ममकारिणं वृकः ।
पुरुपाजं हरते परेतराट् ॥ ९६ ॥

यह पुरुपरूपी बकरा उसी समय तक मैं मैं मेरा मेरा करता रहता है जब तक कि—मौतरूपी भेड़िया इसकी गरदन नहीं आ दबाता जब मौत आ दबाती है तो सारे प्रपचको भूल जाता है ॥ ९६ ॥

स यदाथ पुमान् विपद्यते ।
ममकारः सकलो निवर्तते ॥
सलिलेन यथा प्रतीयते ।
पदचिह्नं स तथा दृश्यते ॥ ९७ ॥

जब यह मनुष्य मर जाता है तो इसकी सारी मैं मेरी यहीं रह जाती है उस समय पानीमें पैरोंके चिह्न दीखें तो यह दीखे ॥९७॥

न कदापि पुनस्स लभ्यते ।
न धनं रक्षति शत्रुसाद् गतम् ॥

ललनामपि कालदुर्गताम् ।
अनयस्थं तनयं न शास्ति च ॥ ९८ ॥

मरनेके बाद वह फिर कभी नहीं दीखता और तो क्या कहैं जिस धनकी रक्षामें वह रातदिन व्यग्र रहा आता था उस धनको रखानेके लिये भी फिर नहीं आता उसे वैरी अपना बना लेते है । फिर वह समयके फेरसे दुर्गतिमें फंसी हुई स्त्रीको भी समझाने नहीं आ सकता है और न कुमार्गोंसे पुत्रोंको ही रोक सकता है ॥ ९८ ॥

अहितोऽस्य भुनक्ति मेदिनीम् ।
महिषीमस्य दुहन्ति दुर्जनाः ।
वडवा परि वाह्यते परैः ।
अहहा हा जगतामसारता ॥ ९९ ॥

वैरी इसकी भूमिको भोगते हैं इसकी भैंसको वे लोग दुहते हैं जिनकी यह सूरत भी देखना नहीं चाहता था इसकी घोड़ीपर दुश्मन सवारी करते हैं । देखो ससार कितना असार है कि–जरासी आख मिचते ही कुछका कुछ हो जाता है ॥ ९९ ॥

खरवद् वहति श्ववद् भ्रमति ।
अथ जीवत्यनिशं विडालवत् ॥
रचयन् गृहगोष्ठगोपुरान् ।
म्रियते हन्त कुलालकीटवत् ॥१०० ॥

गधेकी तरह ढो ढो कर मरा जाता है । कुत्तेकी तरह रातदिन दर दर भटकता फिरता है । जैसे विलोटा चोरीकी रोटी और मारसे जार होता है उसी तरह चोरी मक्कारीसे पेट भरता फिरता है । अपने पापोंको नहीं जानता । रातदिन घर वाग मकान हवेली वाहर

द्वार बनाते बनाते कुम्भारके कीरोंकी तरह अनायास मर जाता है। ॥ १०० ॥

यद्देतदनिष्ठमीदृशम् ।
जगदेतत् खलु दृष्टनष्टवत् ॥
पुनरत्र कियान् कियानयम् ।
जनमोहो मनुते तदिष्टवत् ॥ १०१ ॥

यह बड़ी भारी बुरी बात है कि—' संसारकी सारी बातें नाशमान है यह देखा जा रहा है तो भी मनुष्य इसे इष्टकी तरह मान रहा है यह मनुष्योंका कैसा २ मोह है। यह कैसा है मैं भी तो देख लूं इस इच्छासे रातदिन इसीमे लगा हुआ है। ॥ १०१ ॥

यदि स क्षणभङ्गुरं जगत् ।
ननु पश्यन्नपि नैव पश्यति ॥
धिगहो रटितं श्रुतं मतम् ।
मनुजोऽयं दनुजानुजीवनः ॥ १०२ ॥

यदि यह मनुष्य इस क्षणभङ्गुर जगतको देखता हुआ भी नहीं देखता तो यही एक वड़ा अचम्मा समझना चाहिये। उसके सारे श्रवण मनन और निदिध्यासन को पूर्ण धिक्कार है। वह एक प्रकारका राक्षसोंका ही अनुजीवी है ॥ १०२ ॥

श्रीडीडवानपुर झालरिया मठस्थ ।
स्वाचार्य्य मौलमणि बाल मुकुन्ददासः ॥
कैश्चित्प्रवर्तित इदं स्म करोति राम—
नारायणः शतकमुत्तमवृत्तवद्धम् ॥१०३ ॥

मारवाडमें एक डीडवाना नामक प्रसिद्ध नगर है उसमें उत्तर

झालरिया मठके प्रतिष्ठापक श्री बालमुकुन्दाचार्य्यजी हुए हैं जिनका पुष्करमें नया रंगजीका मंदिर है। उनके शिष्य पं. राम नारायण शास्त्रीने किन्ही उत्तम पुरुषोंकी प्रेरणासे इस शतकको उत्तम छन्दोंमें रचा तथा माधवाचार्यने हिन्दी किया है। स्व. महाराजके ध्यानी मानी भक्त शिष्य सोमाणी परिवारकी परम श्रद्धाकी ही यह एक कृति है जो इस रूपमें उपस्थित है ॥ १०३ ॥

श्रीमद् अनन्ताचार्य्य सूरि पञ्चकम् ।

राम प्रपन्नदास कृतम् ।

अनन्ता गुणा यस्य देशे च काले ।
पदार्थेषु वा व्याप्य वर्तन्त एव ॥
अनन्तात्मकत्वात् स्वगत्या स्वयं वा ।
सदा वर्तते नास्त्यतस्ते वियोगः ॥ १ ॥

जिसके इतने अधिक और महान गुण हैं जिनका किसी भी देश और किसी भी काल में अन्त नहीं हो सकता क्योंकि आप अनन्त (शेष) के अवतार भगवान रामानुजाचार्यके अपरावतार हैं। आप अवतार पुरुष होनेके कारण सर्व व्यापक हैं कोई भी जगह ऐसी नहीं है जहाँ आप न हों सर्वव्यापीका कभी वियोग हो ही नहीं सकता फिर आपका कभी वियोग हुआ यह कहना तो बन ही नहीं सकता ॥१॥

तथापीश ! ते ते गुणास्तद्वपुश्च ।
सदा रामवद् ध्यानगम्या भवन्ति ।
अतो मादृशां ते वियोगः कथं तम् ।
सहामः प्रभो पाहि दासानशेषान् ॥ २ ॥

हे ईश ! तो भी आपके दिव्य मङ्गल विग्रहके दर्शनके समय

हम जिन गुणोंका अनुभव करते थे वे अलौकिक गुण तथा वही सुहावना दिव्य मङ्गल विग्रह तो भगवान रामचन्द्रके दिव्य देहकी तरह ध्यान धरनेकी चीजे थीं । ए भक्तानुकंपिन् ! मुझ जैसे आदमियोंको तेरा वियोग कैसे सहा जाय देखो ? अब आपका वियोग आपके अकिंचन दासोंको अत्यन्त सता रहा है अतः आकर इसकी रक्षा करिये ॥ २ ॥

कथं वात्र रामानुजाज्ञाप्रचारः ।
कथं तद्विना पापपुंजापहारः ॥
कथं वा जना मोक्षभाजो विना ते ।
प्रपत्ते धुरं वा दधातीह को हा ॥ ३ ॥

यह तो बताइये कि—आपके बिना भगवान रामानुजाचार्य्यकी दिव्य आज्ञाका कौन प्रचार करेगा । जब उसका प्रचार ही नहीं होगा तो फिर किससे पापोंका नाश होगा । अब दुख तो इस बातका भी भारी है कि—आपके बिना अब मनुष्य मोक्षके अधिकारी कैसे होंगे । और तो और शरणागतिके प्रचारकी धुरा आज कौन धरेगा ॥३॥

अतः कष्टशेषादशेषान् स्वदासान् ।
जनान् पाहि नाथ ! स्वरूपान्तरेण ॥
श्रियः कान्त ! याचे भवन्तं सदैव ।
स्वपक्षस्य संरक्षकं मेषयाशु ॥ ४ ॥

ए भगवान लक्ष्मणार्य्यके अपरावतार पुरुष ! तेरे वियोगमें तेरे जन त्राहि त्राहि मचा रहे हैं अब आप हमारे लिये दूसरा अवतार लेकर यहाँ आयें । हे लक्ष्मीपते ! मैं आपसे यह भीख सदा ही कर जोड़ कर माग रहा हूँ कि—' अपने भक्तोंके संरक्षकोंको जल्दी भेज, जो तेरे सिद्धान्तोंकी रक्षा हो सके ॥ ४ ॥

अनन्तार्य्यसूरेः प्रभावप्रकर्ष—
—प्रवृद्धाम्बुराशेः क्व रत्नानि तानि ॥
क्व चेयं महार्नाच काचाय बुद्धिः ।
अहो खेचरा खेचरा एव सर्वाः ॥ ५ ॥

जिसके बढते हुए प्रभावकी वृद्धिका उमड़ा हुआ समुद्र सदा ही बढ़ता रहा है उन श्रीमद् अनन्तार्य्य सूरिरूपी समुद्रके उपदेशरूपी महार्घरत्न कहां ? तथा कहा ? मुझ जैसे अकिंचन जनकी कुछ काचोंकी ओर दौड़नेवाली बुद्धि, आजतक अनन्त सूरिके न होनेसे ये तारे आकाशमें विचर रहे है नहीं तो उस रविके प्रखर प्रतापके आगे इन क्षुद्रोकी कोई पूछ नहीं थी जो कि आज इधर उधर अठखेलियाँ करते हुए दौड़ रहे हैं। वास्तवमें सूनेमें चमकने-वाले सूनोट ही चाहते हैं ॥ ५ ॥

अनन्तार्य्यपदाम्भोजवियोगाकुलमानसः ।
रामप्रपन्नदासोऽयं कृतवानार्य्यपंचकम् ॥ ६ ॥

श्रीमान् परम श्रद्धास्पद प्रतिवादि भयंकर मठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी महाराजके पादपद्मोंके असमयके वियोगसे व्याकुल हृदयवाले श्री राम प्रपन्नदासजीने यह उनका पंचक बनाया है ॥ ६ ॥

विरह प्रलापी—

श्री हयग्रीव रामानुज विद्यालय, बड़ा खटला। श्री वृंदावन—।

